

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180728

UNIVERSAL
LIBRARY



अथ श्रीउद्योगीताप्रारम्भः ।

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित।



जिहको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शक १८४६.

इसका सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षने स्वाधीन रहता है ।

यः पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की ।

सत्य नाम ।



श्री कवीर साहिव ।



सत्यसुकृत, आहिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
 मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान,
 धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कु-
 लपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम,
 अमोल नाम, सुरतिसनही नाम, हक नाम,
 पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र
 नाम, दया नामकी दया वंश-
 व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

एकविंशतिस्तरंगः ।

अथ उग्रगीताप्रारंभः ।

उत्थानिका ।

दोहा-उग्र गीता सार है, सुकृत दया लिसाय ।

करे दूरि अज्ञान को, अंजन ज्ञान समाय ॥

करे दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सो देइ ।

तल्लिहारी ने गुरुनकी संग जगदी ने ने ॥

सोरठा-अंजन ज्ञान है सागर, रहे नहीं अज्ञानता ।

तेहि गुरुकी बलिहार, मेरी सदा प्रणाम है ॥

चौपाई ।

प्रथमें बन्दों सतगुरु पाया । बंदी छोर करहु तुम दाय्या ॥
धर्मदास बिन्ती अनुसाग । दया करो दुख भञ्जनहारा ॥
अविगतिकी गति जाइ न जानी । अहौ दयाल सो कहौ बखानी ॥
वेद शास्त्र सब जगत बखानै । गुप्त तत्त्व कोइ कर्म न जानै ॥
जब लगि वेद भेद नहि जानै । तबलगि शब्द न हितकर मानै ॥
वेद बिचारि भेद जो जानै । सत्य शब्दमें मोहि पहिचानै ॥
जीव जन्तु माया लपटाना । ताते वेद भेद नहि जाना ॥
करवा चौथ औ होरी पूजै । परम तत्त्व कैसेहु नहि बुझै ॥
देवी देव बहु पूजा ठानै । सार शब्द हृदय नहि आनै ॥
तीरथ व्रत महँ तन मन पागै । सद्गुरु शब्द न कबहु लागै ॥
तेहिते सब जग गयो विगोई । जनम काल धरि सबही खोई ॥
तुम सद्गुरु हौ मुक्तिके दाता । अगम अपार कहौ विख्याता ॥
सद्गुरु मोहि कहौ समझाई । जाते मनकी संशय जाई ॥
श्रीकृष्ण गीता जो भाषा । सो समर्थ सुनबे अभिलाषा ॥
केहि विधि अर्जुन रणमहँ नयऊ । केहि विधि ताहि मोह पुनि भयऊ ॥
केहि विधि कृष्ण ताहि समझाये । सो समर्थ कहौ भेद बताये ॥
दोहा-हे दयाल बिन्ती करौ, रहौ चरण चितलाय ।

गीता अर्थ भेद सब, मोहि कहौ समुझाय ॥

चौपाई ।

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । तत्त्व भेद है गुप्त निवासा ॥
वेद भाव संसार पसारा । ताते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
बहु व्यवहार रच्यो बहु भांते । जगत सकल भर्मत है ताते ॥
वेदतत्त्व तुम सुनौ सुजाना । अर्जुनगीता कृष्ण बखाना ॥

सो मैं तुमसन कथा सुनावों । तत्त्व भेदका मता बुझावों ॥
 शास्त्र वेद पुराणन मांहीं । गीता मता तत्त्व जो आहीं ॥
 तत्त्व मता जो कृष्ण सुनाया । सद्गुरु तो कछु अगम बताया ॥
 तत्त्व निरतत्त्व दोहोते न्यारा । धर्मदास तुम करहु विचारा ॥
 जो संशय गीताके होही । सो अब सकल सुनावों तोही ॥
 गीताका अब गम्य बतावों । सार शब्दका भेद सुनावों ॥
 जहँ देखौ तहँ आप निवासा । सबते न्यारा सबमें बासा ॥
 समै-तत्त्व मता है गीता, वेद पुराणमें सार ।

ताते अगम अपार है, पूरण शब्द हमार ॥

अथ श्रीभगवद्गीताप्रथमोऽध्यायप्रारम्भः ।

कबीर उवाच ।

अब गीता मैं कहौ बखानी । कृष्ण कहा सो अर्जुन मानी ॥
 ताते न्यारा शब्द बतावों । तत्त्व मांदि निहतत्त्व लखावों ॥
 जब यह सृष्टि भई महि भारा । तेहि मारण हरिमता विचारा ॥
 बंधु विरोध कियो हरि जबहीं । कौरौ पाण्डु जुरे दल तबहीं ॥
 अर्जुन रथ चढ़ि आये तहवां । दोउ दल युद्ध रचो है जहवां ॥
 कृष्ण सारथी रथ जब हांका । तासों अर्जुन ऐसो भाषा ॥

अर्जुन उवाच ।

दोऊ दलमें ले रथ राखों । दूनो देखों अपनी आँखों ॥
 सुनिकै कृष्ण ऐस ही कीन्हा । दोउ दल बिच रथ राखै लीन्हा ॥
 रथ जब दोऊ दलमें राख्यो । भयो मोह अर्जुन अस भाख्यो ॥
 ये सब बधु हमारे आही । हे प्रभु मैं मार्गें कहु काही ॥
 भाई चचा भतीजा साग । कैसे मार्गें कुल परिवारा ॥
 जहँ लग देखों दोऊ सेना । आपन कुल मार्गें केहि लेना ॥
 विधवा होय है सकला नारी । ऐसो दोष लेत को भारी ॥
 राज पाट मैं बहू न चाहों । सुखसम्पति कुलधर्म निवाहों ॥

(८)

बोधसागर ।

तीन लोकका राज जो देई । हत्या बंधु तबहु नहिं होई ॥
जो तुम कहो उन अवगुन कीन्हा । छत्रहु प्रकार भारऊ लीन्हा ॥
तिन्ह प्रकारन मारा चाही । तौ यह मोहि दोष नहिं आही ॥
छौमें एक प्रकार जो होई । ताके मारे दोष न सोई ॥
धर्मदास उवाच ।

तब धर्मदास विनय अनुसारी । छौ प्रकार कवन कह भारी ॥
तेहि प्रकारन मारा चहिये । सो सब स्वामी मोसे कहिये ॥
कबीर उवाच ।

देखो हत्या को अब बरना । बहु संग्राम किये का सेना ॥
प्रथमै अग्नि देई घर काई । मात तासु दोष नहिं होई ॥
दूजे औरको जहर खवावै । हने ताहि कछु दोष न पावै ॥
तिसरे छत्र जो लेई छुड़ाई । राज काजमें पाप न भाई ॥
चौथे नारि पराई लेही । मारे ताहि पाप नहिं तेही ॥
पंचये धन चोरावन आवै । तेहि मारे कछु दोष न आवै ॥
छठये शस्त्र लै मारन धावै । मारै ताहि विलम्ब न लावै ॥
यह अपराध मारिये जोई । मारत हत्या कबहु न होई ॥
अर्जुन उवाच ।

छ अपराध हमहिं कू लागै । तऊ न हतों कर्म सब त्यागै ॥
मोसों यह अपराध न होई । जो मोकहैं इह मारि विगोई ॥
अर्जुन धनुष बान गहि डारा । सबका अपनो बंधु बिचारा ॥
सब कह कुल परिवार निहारा । उपजो मोह अस्र गहि डारा ॥
सुनहु सन्त अर्जुनको विखादा । इह लागि कीन्हो वाद विवादा ॥
अर्जुन मोह सम्पूर्ण भयऊ । कृष्ण अपन मन मत जो ठयऊ ॥
कीजै छल यक मता विचारा । अर्जुन बुद्धि हतौ यहि वारा ॥
ब्रह्मज्ञानते यहि समुझावउ । काल रूप अपनो देखलावउ ॥
तब यह मानै कहा हमारा । मारौ फोरि सकल परिवारा ॥

कबीर उवाच ।

धर्मदास यह काल सुभावा । जाके जपन सृष्टि मन लावा ॥
सुर नर मुनिसब छलि २ मारा । कोई न छूटो यह संसारा ॥
ताते सतगुरु शब्द पुकारा । चीन्हो तत्त्व भेद टकसारा ॥
मूर्ख सत्य शब्द नहिं जाने । झूठहि झूठ सदा सुख मानै ॥
परपंची यह जग को रचना । बिन सतगुरु कोई नाही बचना ॥

छन्द-यहि भांतिकै हरि युद्ध ठानो भाव कोई ना लहै ।

सकल बंधु विरोध करिकै तासु को मारन चहै ॥

ज्ञान औ अज्ञान करि भरमाइ डारो चित्तको ।

तबहु मूर्ख नहीं बूझै देख फंदि उस बरतको ॥

सोरठा-सुन धमदास सुजान, शब्द एक संसार है ॥

हंस होइ निरवान, मन बच कै निश्चय गहै ॥

इति श्रीउग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमतकबीरधर्मदाससंवादे

अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

कृष्ण जो मन में मता विचारा । अर्जुन सो पुनि बचन उचारा ॥
तुम काहे मोहै गहि लीन्ह। केहि कारण तुम होहु अधीना ॥
क्षत्री धर्म लाज बडि होई । तुम कह दोष न लैहै कोई ॥
जो तुम जानु सदा ये जीहैं । येई तौ जन्म फेरि फेरि लेहैं ॥
अमर तुमहु मैं नाही कोई । फिरि २ आवागवन समाई ॥
मैं हूँ अमर नहीं हों भाई । हम तुम यहि विधि फिरि २ आई ॥
जब २ पाप प्रगट मोहि होई । धरि अवतार करौ क्षय सोई ॥
जब २ द्वापर आवै भाई । हम तुम यहि विधि फिरि २ आई ॥
कौरव पाण्डव फिरि २ लडि हैं । आपहि आपु मारि कै मरि हैं ॥

तुम्हरो कीन्ह कछु नहि होई । देखौ ब्रह्म ज्ञान करि सोई ॥
 मनमें अहं कबहु नहि कीजै । को मारै कहु को कह छीजै ॥
 आपु जो करता काल कहावै । सोई यह संचार कगवै ॥
 मनमहँ मोह कबहुँ नहि कीजै । इच्छा प्रभुकी गदि कर लीजै ॥
 शस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई । कारण करण करै प्रभु आई ॥
 तुम शिर कछु न लागे भार । अपु ते आपु जाय सब माग ॥
 जो तुम कहो जीव सब मरि हैं । जीव अमर फिरि २ अवतरि हैं ॥
 मारै मरै न जारे जरई । ताको मोह कहा तै करई ॥
 जो काया सो मन चितलाया । मृत्तक सदा बनी यह काया ॥
 मृत्तक रूप सदा रहै काया । तेहि कारण तुम करत हो माया ॥
 तुमहौ अहो युद्ध अति आगर । यहि जगमें तुमही हो उजागर ॥
 जो तुम युद्ध करो नहि भाई । जगमें होइ है तुम्हारि हँसाई ॥
 कहि है सबै युद्ध सो डरई । क्षत्रि धर्म तेरो नहि रहई ॥
 अपने कुलको धर्म जो हारै । नर्कवासको सो पगु धारै ॥
 जो कुल धर्म सदा प्रतिपाले । स्वर्गवास में सो सुख चाले ॥
 अपनो धर्म न छाडिय भाई । काहेको तुम कगहु हँसाई ॥
 लोग पंच जो निंदा करई । धिग जीवन तोको अनुसर्गई ॥
 तब तो भली बात नहि होई । महा दोष पुनि लागे सोई ॥
 पाप होय मनमें पछिताई । नर्कवास तब रहै समाई ॥
 कर्म योग तोहि वाक्य सुनावौ । स्वर्गवास ताते पहुँचावौ ॥
 ब्राह्मण क्षत्री वैश्य औ शूद्रा । प्रभु कह छाँडि भरै सब वोद्रा ॥
 नरनारायण देह सवाँरा । तबहु न चीन्है मूढ गवाँग ॥
 ब्राह्मण कर्म सुनो चितलाई । प्रातः स्नान जपै प्रभु राई ॥
 नेम धर्म शुचि संयम करई । सन्ध्या गायत्री चित धरई ॥
 ठाकुर सेवा मन चितलावै । कथा कीर्तन करै कगवै ॥
 मनमें सेवा फल नहि मांगे । स्वर्गवास पहुँचे सब आगे ॥

क्षत्री धर्म कर्म बहु करई । स्नान करै प्रभुको चित धरई ॥
 यज्ञदान निज धर्म निवाहै । सूरतन नहिं दलहि सका है ॥
 वैश्यवर्ण व्यापार व्योहारा । नेम धर्म जप तप व्रत धारा ॥
 शूद्र वर्ण सेवकाई करई । मन वच कर्म इहै चित धरई ॥
 सेवा फल है अगम अपारा । आवागमन ते होइ नियारा ॥
 एते कुलके धर्म जो कहिये । सदा सर्वदा जो निर्वहिये ॥
 यह मारग जो लागा रहई । स्वर्ग वासमें सो सुख लहई ॥
 मारग छांड़ि कुमारग लागै । काम क्रोधमें तन मन पागै ॥
 नर्कवास तेहि कारण पावै । जन्म २ वह योनी आवै ॥
 निंदा सकल ताहिकी करई । वाउ वेद ताहि परिहई ॥
 ताते अर्जुन ज्ञान विचारो । ब्रह्म ज्ञान मनमें संभारो ॥
 मोह लाजकै वंदन छांडो । लैकै अस्र कुटुम सब वाड़ो ॥
 तुम कह पाप पुण्य नहिं होई । कारण कर्मण कगवै सोई ॥
 साधु सत जो परम सुनेही । पाप पुण्यते लित न देही ॥

अर्जुन उवाच ।

कहैं अर्जन सुनु पुरुष पुगणा । तिन साधुन कर कगै बखाना ॥
 कसी रहनि रहै वै बोलैं । कैसे बैठैं कैसे डोलैं ॥
 बोलै कृष्ण तब चतुर सुजाना । यहि विधि रहै साधु निर्वाणा ॥
 स्थिरमन बुद्धि निहकामी होई । पांच पचीसों रहे समोई ॥
 बोलैं सत्य असत्य न भाखै । अभ्यन्तर गति प्रभु कह गखै ॥
 सो तो कह दुख सुख नहिं मानै । दृष्टि माह प्रभु पूरण जानै ॥
 तत्त्व प्रकृति चापि करि बैठे । जैसे कछुवा पाउ समेटे ॥
 सीतल सत्य सहज पगु धारै । बाहर भीतर ब्रह्म निहारै ॥
 यह लक्षण संगति कै भाई । इंद्रि जीतै साधु कहाई ॥
 प्ररण पक्ष जो अर्जन करेऊ । रोगी मूर्ख भाव जो धरेऊ ॥

निह इच्छा रोगी है भाई । मूरख इच्छा नाही पाई ॥
 ताकर मैं विरतान्त सुनाऊं । सकल कामना तोरि मिटाऊं ॥
 मूरख मुग्ध कछु नहिं जानै । काम क्रोध मन कछु न आनै ॥
 पुगइनि सम वासा है वाको । लिप्त अंग कछु होइ न ताको ॥
 निशिवासर फिरि नाम भुलाई । तेहि कारण भर्म सब ठाई ॥
 रोगी इंद्री जीत कहावै । काम क्रोध नहिं क्षुधा सतावै ॥
 पै इच्छा जो अब उठि लहे । काम क्रोधमें बहु चित देहै ॥
 नाम विहीन दुखी बहु तलफै । खान पान आगे बहु कलफै ॥
 ताते पटतर भक्त न भाई । बाधा यम पाटनको जाई ॥
 साधु संत की रहनि बतावौ । करनी साखि जो वाक्य सुनावौ ॥
 ऐसो रहनि साधु जो होई । जाकी महिमा वरनि न कोई ॥
 ताते अर्जुन ज्ञान बिचारौ । मनते लोभ मोह गहि डारौ ॥
 दुनिय अध्याय इहां लग्य कदेऊ । आगे भेद और कछु लहेऊ ॥

कबीर उवाच ।

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा । यतना कृष्णकीन्ह केहि आसा ॥
 छल छिद्रहि कै ज्ञान सुनावै । अर्जुन कह तम गुण उपजावै ॥
 जाते धनुष बान संधारै । सब परिवार चुनीछुनि मारै ॥
 करता आप जो युद्ध करावै । शिर पाण्डों के भार चढावै ॥

छन्द—काल कर्ता कर्म करई समुझि देखु विचारिकै ।

संत शब्द एक सार निर्मल ताहि लेह संभारिकै ॥

तीनि गुण सब राखिकै जब जाइकै चौथे मिले ।

शब्द सुरति लै लोक पडुँचै तबहि इंसा उठि चले ॥

सोरठा—ऐसी रहनी इंसा, धर्मदास सो अमर है ।

रहै न कबहूँ संश, जो नामी नामै गहै ॥

इति श्रीमद् उग्रगतिब्रह्मज्ञानयोगमतकबीरधर्मदाससंवादे

अर्जुनकृष्णअशंकयोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन पूछे सुनु भगवाना । निर्मल ज्ञान सुनावो काना ॥
तुम तो कहौ कि युद्ध मचावौ । सब पलको तुम मारि गिरावौ ॥
ज्ञान कही कहि मोहि समझावौ । फिरि कुलधर्म मोहि बतलावौ ॥
जेहि ते मोर अकाज न होई । मोहि ज्ञान प्रभु दीजै सोई ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कहै कृष्ण सुनु अर्जुन बीरा । तुम तौ क्षत्रिय हौ रणधीरा ॥
मारग दोइ ज्ञान हैं भाई । ताते तोहि कहौ समुझाई ॥
निवृत्ति मारग आहि निरासा । सदा ब्रह्ममें रहै निवासा ॥
तत्त्व प्रकृति लिप्त नहि होई । सदा रहै निलेपी सोई ॥
नाम विना कछु बात न बोले । मन वच क्रम अन्तरपट खोले ॥
निष्कर्मि निर्मल निर्मोही । नहि इच्छा मननाम समोई ॥
जगमें रहै कमल सम भाऊ । ऐसे लिप्त होइ नहि काऊ ॥
दान पुण्य जो यह कछु करई । ताकर फल मनमें नहि धरई ॥
दाता भुक्ता प्रभु कह जानै । कर्म धर्म कछु मनहि न आनै ॥
मारग निवृत्ति साखि जो अहई । महाकठिन मारग तेहि कहई ॥
कठिन विहंगम मारग होई । पहुँचै कोटिन्ह महुँ पुनि कोई ॥
तेहि मारग कोइ चलने न पावै । काम क्रोध मदलोभ भुलावै ॥
पूरण सिद्ध हुवा नहि जाई । ताते तोहि प्रवृत्ति दृढ़ाई ॥
कुलके कर्म सदा चित धारै । कबहु न छाड़ै लोकाचारै ॥
दान पुण्य जप तप व्रत करई । संध्या तर्पण मन चित धरई ॥
नियम धर्म औ करै जो स्नाना । संवा सुमिरन धारै ध्याना ॥
उद्यम अपने कुलको करई । यह मारग जो लागा रहई ॥
सो तो कर्मके कश्मल धोवै । धीरा तनमन मैल जो खोवै ॥

यह पिपील मत कहिये भाई । हरे हरे वह मारग जाई ॥
 तेहि मारग कोइ विघ्न न लागै । कमहि कम धर्म तब जागै ॥
 स्वर्गवास पावै सो प्राणी । कबहीं ताको होय न हानी ॥
 तासों में बहु प्रीति जनावों । संशय दुख सब दूरि बहावों ॥
 धन सम्पति सुख बहु विधि देऊँ । आपन दारि मैं ता कह लेऊँ ॥
 ताते प्रवृत्ति अधिक फल भाई । लोकाचार समीप बताई ॥
 तुम क्षत्री रणपति हो आगर । गहो धनुष तुम जक्त उजागर ॥
 ऐसो कहो जब कृष्ण सुजाना । अर्जुन पुनि पूछो भगवाना ॥
 कैमे कर्म लिप्त नहि होई । कर्म धर्म तुम थापेउ सोई ॥
 कहै कृष्ण अर्जुन सुन लीजै । सेवा सुमिरण मैं चित दीजै ॥
 करि करि कर्म मोहि सब अपैं । कबहुँ न पाप दोष सो डपैं ॥
 ताके शिर नहि लागै भारा । सत्य भाव मो ऐसे विचारा ॥
 पांच हत्या नित गेही कर्गई । अंध भावते गेही फिर्गई ॥
 नित नित हत्या शिर पर लेही । बांचे जन कोइ परम सनेही ॥
 कहै अर्जुन यह हत्या कैसी । गेहीको नित लागै सौसी ॥
 सो तो वार्तिकै मोहि सुनावौ । दुविधा भावसो मोहि मिटावौ ॥
 कहै कृष्ण अर्जुन सुनु वैना । हत्या पंच निरखि कै लैना ॥
 प्रथम हत्या जो पीसेपिसाना । दूसर कुटै भानि जो धाना ॥
 तिसरे बड़नी जो घर देई । चौथे कलशा भरै जो कोई ॥
 पंचये रसोई चूल्हा वारै । हत्या पांच जीवहुँ मारै ॥
 कहै अर्जुन यहि विनु को रहई । यह पातक कैसे परिहर्गई ॥
 यह पातक जो देह सनेही । कैसे उधरनी इनसो लेही ॥
 सुनु अर्जुन जिव कर्म न लागैं । नित नित करि प्रभुचरणन पागैं ॥
 जो कछु करै सो प्रभुके कारण । ताहक दोष न कछु विचारण ॥
 करै रसोई प्रभुके नामा । पुनि अपैं जल लै सब सामा ॥

अंत कार काढ़ै परसादा । दीन दुखित जो पोषै सादा ॥
 ता पाछे प्रसाद जो पावै । ताको हत्या निकट न आवै ॥
 ऐसे कारज प्रभु सनमानै । ताहि दोष नहिं वेद बखानै ॥
 त्रै अध्याय तोहि सन कहेऊं । कर्म योग परकट कैं सहेऊं ॥
 कहै कबीर सुनु धर्म मुनि आगर । सत्य सुकृतको ज्ञान उजागर ॥
 यह तौ कर्म ज्ञान दृढ़ावै । फल भोगै फिरि योनिहि आवै ॥
 निवृत्ति कहै त्रिवृत्ति लै आवै । फिरि फिरि लैके कर्म दृढ़ावै ॥
 ताते मैं संसारहि आवा । सत्य शब्द कहि बहु गोहरावा ॥
 बूझैगा कोइ सन्त विवेकी । ज्ञान दृष्टिते सब कछु छेकी ॥
 हम तौ तीनि लोकते न्यारा । जो बूझै सो हंस हमारा ॥
 यह गीझै तौ स्वर्ग देइ वासा । कर्म भोगि मृतुलोक निवासा ॥

छन्द—धर्मदासमैं कहौं तोसों सार शब्द जो भेद है ।

हंस मन बच गहैं ताकु पलक ना विझुगार है ॥

विश्वास देखो प्रीति करि मैं निकट प्रकटो तासुको ।

यम फंद शंसा भटी चौथो लोक देऊ निवासको ॥

सोरठा—अगम भेद है सार, भेद कोइ नहिं पावई ।

उतरै भव जल पार, शब्द गहै विश्वास कै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

कर्मयोगारूपायानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अर्जुन सो अस कहेउ भगवाना । अगम भेद बतावै ज्ञाना ॥
 यह गीता काहु नहिं पाई । सो मैं तोसों वाक्य सुनाई ॥
 प्रथम मैं गीता सूय सुनावा । उन वैवस्वत पुत्र पढ़ावा ॥

ताकर सुन देवसि जो भयऊ । अपना सुतहि पढ़ाया लयऊ ॥
 उन्ह ल सुतइश्वाकुहि दीन्हा । प्रकट फिर काहू नहि कीन्हा ॥
 यतिक दिवस जो रहेउ समाई । अब तुम कहैं मैं आनि सुनाई ॥
 और ज्ञान यहि सम नहि होई । सुरति लौरति लै देखहु सोई ॥
 तब अर्जुन पूछेउ अस बाता । तुम तो भये यहि युग उतपाता ॥
 सूर्य को आदि युग गयऊ । तुम सो गएउ उन्ह ज्ञान पयऊ ॥
 श्रीभगवानुवाच ।

कहे कृष्ण सुनु वचन प्रमाना । जो मैं तोहि सुनावों ज्ञाना ॥
 मैं तो सदा रहों जगमाहीं । तुमहू रहौ हमारे पाहीं ॥
 जन्म अनेक तेरो चलि गयऊ । जन्म अनेक मेरो पुनि भयऊ ॥
 तैं अचेत माया में बंधा । मैं निर्मल जस पूरण चन्दा ॥
 जन्म जन्म के गुण मैं जानों । अपनो तेरो गुण पहिचानों ॥
 आदि अंत सकलौ मैं जानों । ताते यतना भेद बखानों ॥
 तै है काम क्रोध अधिकारा । नहि बूझै तैं चरित हमारा ॥
 अर्जुन उवाच ।

पुनि अर्जुन अस पूछन लयऊ । कारण कवन जन्म तुम धरेऊ ॥
 निह इच्छा तुम अंतर्यामी । काहे आवागमन समानी ॥
 तुम्हरे दुष्ट मित्र नहि कोई । कारण कवन जन्म धर लेई ॥
 श्रीभगवानुवाच ।

कहे कृष्ण सुनु परम पियारे । धरणी माँह पाप होइ भारे ॥
 बहुत अधर्म होन जब लागे । वसुधा भार मही उठि लागे ॥
 जब जब देखौ महि पर भाग । तब तब आनि लेउ अवतार ॥
 जन्म कर्म लै खेलौ जगमें । करि संहार जो रहौ अलग मैं ॥
 मेरी गति मति कोइ न जानै । महिमा चारौ वेद बखानै ॥
 होइ निष्कपट जो मोकह ध्यावै । महा अनंद परम निधि पावै ॥

जो मोसों कोइ अंतर राखै । कै २ दंभ भक्ति मन भाखै ॥
 ता कहै काल बहुत दुख देई । दंभी भार बहुत शिर लेई ॥
 मैं हूँ तासों अंतर राखौ । कबही तासों निकट न भाखौ ॥
 ताते तुम मोकह पहिचानौ । मेरो कहा सदा तुम मानौ ॥
 तब अर्जुन बोले अस बानी । मर्म तुम्हार न काहू जानी ॥
 करन करावन तुमही स्वामी । केहि कारण पृथ्वी अकुलानी ॥
 तुम काहेको मारण आवौ । केहि कारण तुम भार चढ़ावौ ॥
 तब अस बोले कृष्ण सुजाना । मर्म आपनो कहौ बखाना ॥
 तीनि लोक जो राज हमारा । ताते रचौ खेल विस्तारा ॥
 बहुत भांतिकै ख्याल बनावौ । खेलि ख्याल पुनि ताहि मिटावौ ॥
 तीनि लोक में आवौ जावौ । निर्गुण सगुण जु नाम धरावौ ॥
 जो जन भक्ति हमारी करई । मन वच कर्म मोहि चित धरई ॥
 तेहि कह महू सहायक होऊँ । उन्हके दुष्टहि मारि बिगोऊँ ॥
 सदा रहौ भक्तन हितकारी । तारण तरण हे नाम सुगरी ॥
 अर्जुन बहुरि जो पूछन लागे । इंद्री जीति सबै गुण त्यागे ॥
 करन करावन कहवौ स्वामी । तुम पूरण हौ अंतर्यामी ॥
 काहे सेवा पूजा लावै । देवि देवता बहुत मनावै ॥
 देव पितरको पिण्ड जो भरई । केहि कारण बंधनमें परई ॥
 तीरथ व्रत बहुतै तुम धावै । केहि कारण तुम नाम धरावै ॥
 सुनु अर्जुन मैं कहौ बखानी । मेरी मति गति विरले जानी ॥
 जग रचना स्थिर नहि पावै । ब्रह्म ज्ञान विराग उठावै ॥
 कोइ काहूकी शंक न मानै । आपु आपुमें ब्रह्म बखानै ॥
 सब व्यवहार जगतके चाहौ । राज काजमें वोर निवाहौ ॥
 तब यह कर्म दढावौ आई । तौन सृष्टि तुम कस उरझाई ॥

चारि चरण तब परकट कीन्हा । कर्म धर्म पुनि ता कह दीन्हा ॥
 पूजा हम ही थापो । सब देवन महुँ हम ही आपो ॥
 पूजत मोहि देखै संसारा । बहुतै भौंति तब पूजा धारा ॥
 तीर्थ व्रत जप तप गहि लीन्हा । ताकर फल संसारहि दीन्हा ॥
 फल कारण सब जग अरुझाना । देवी देव रहे लपटाना ॥
 जैसा करै तैसा फल पावै । दान पुण्य बहुतै मन लावै ॥
 ब्रह्म ज्ञान विनु मोहि न जानै । ताते चौगसी अरुझानै ॥
 आवै जाई जगत मझारा । पशुवा शूकर श्वान सियारा ॥
 चौरासी योनीमें फिरई । बडे भाग नर देही धरई ॥
 जो कोइ भक्त मोहि चितलावै । मोक्ष मुक्ति परम पद पावै ॥
 मन संकरूप विकरूप ते त्यागै । तब यह पूरण तंतुहि लागै ॥
 यज्ञ कर्म सब विधि व्यवहारा । ताते भव जल उतरै पारा ॥
 द्वादश यज्ञ कर्म है भाई । जेहिते महा परम सुख पाई ॥
 सो अब तुमसों कहौ बखानी । यज्ञ कर्म करै जो प्राणी ॥
 प्रथमें ब्रह्म यज्ञ है भाई । ब्रह्म सउ जलै ब्रह्म अरुपाई ॥
 ब्रह्म अग्नि होम ब्रह्म देई । सब विधि ब्रह्म जानिकै लेई ॥
 दुतिया यज्ञ देव यज्ञ करावै । देवि देवता बहुत मनावै ॥
 सब साउज लै होम करावै । यहिविधि जन्म सफल सो पावै ॥
 तीसर यज्ञ संयम करु इंद्री । साधै भूख प्यास औ निंद्री ॥
 पांच पचीश गुप्त लिये खेलै । मनुवा निशि दिन प्रभु सो मेलै ॥
 चौथ यज्ञ संयम औ आतम । अभ्यंतर चीन्है परमातम ॥
 आतम परमातम जब जानै । यहि विधि भेटै श्रीभगवानै ॥
 पंचयें द्रव्य यज्ञ जो होई । करि मदि रक्षा साधु रसोई ॥
 बहुत भांतिकै साधु जेवावै । तेहि पीछे वह भोजन पावै ॥
 जस कीरति होवै संसारा । ताकी गति वैकुण्ठ सवारा ॥

छठये यज्ञ तपस्या भाई । आगिल जन्म राज कर पाई ॥
 सतयें यज्ञ योग जो साधै । आसन मूल पवन अपगधै ॥
 पूरण योग होइ जो कोई । काल त्रास कह जानै सोई ॥
 जब लगि चाहै काया रखै । फिरि जन्मै तो योग अभिलाषै ॥
 अठयें योग यज्ञ अधिकार्ह । गीता कथा पाठ करै भाई ॥
 पोथी पढ़ि गुरु मारग गढ़ई । सो भवसागरते निर्वहई ॥
 नवयें ज्ञान यज्ञ है भाई । ज्ञान ध्यानमें रहै समाई ॥
 दशयें यज्ञ जो प्राण पयाना । यह नारम जो रहै लपटाना ॥
 एकादश है संयम सारा । सूक्ष्म भोजन करै जेवनारा ॥
 देहीको मिथ्या करि जानै । प्रभु पूरण अन्तर पहिचानै ॥
 द्वादश यज्ञ विधि नाम कमावै । योग युक्ति सब जानि जो पावै ॥
 यहि विधि द्वादश यज्ञ हैं भाई । जो कोइ करै परम हित लाई ॥
 सो भवसागरते तरि जाई । विष्णुलोकमें जाइ समाई ॥
 अर्जुन तुम तौ भक्त हमारे । बहुत उजागर प्रेम पियारे ॥
 माया मोह चितते तुम डारो । धनुष बाण तुम वेगि सम्हारो ॥
 चतुर्थाध्याय कहेउ तुम संगी । यज्ञ योग नाम सब अंगा ॥

कबीर उवाच ।

धर्मदास तुम संत सुजाना । सत्य शब्दका मर्म जो जाना ॥
 यह तो धर्म कर्म व्यवहारा । कहा करै जिन शब्द संभारा ॥
 शब्द हमार भेद टकसारा । जो बूझै सो उतरै पारा ॥
 मुक्ति होइ सत्यलोक सिधावै । तीनि लोक बंधन मुक्तावै ॥
 तीनि लोक जग आवागवना । अघर लोक है सतगुरु भवना ॥
 इच्छा रूप फिरै जन मुक्ता । जहां पुरुष समीप संयुक्ता ॥
 तहँ कर वर्णन कहा बखानों । मूँगेको सपना सम जानों ॥

छंद-लोक उपमा कहा दीजै जगतमें कछु नाहि हो ।
 पुरुष पटतर कहा दीजै समुझियो मन माहि हो ॥
 नदी अठाग्ह गण्डका रेणुका भारिपूर हो ।
 पुरुष शोभा अग्र आभा एति सूरय झूर हो ॥
 सोरठा-पुरुष रूप अपार, कहतै शोभा ना बनै ।
 चीन्हो शब्द हमार, जेहिते पुरुष परसि हो ॥
 इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
 द्वादशयज्ञव्याख्यानो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अजुंन तुमहौ भक्त हमारा । तुम्हरो काज करौ मैं साग ॥
 ज्ञान ध्यानमें मन तन देहू । निशिवासर सुमिरन के लेहू ॥
 ज्ञानवन्त जो है तत्त्वज्ञानी । तिनकी महिमा अवर न जानी ॥
 हर्ष शोक जाके नहि होई । काम क्रोध सो लित न सोई ॥
 कर्म करै करता न कहावै । अभ्यन्तर मारग चितलावै ॥
 इन्द्री आपु आपु सुख चाहै । ताके कबहुं निकट न बाहै ॥
 इंद्री कम सदा होय भाई । ताके लित न होवै भाई ॥
 तिनसों कम करै जो कोई । परमात्म कह लाग न सोई ॥
 सम दृष्टी होय सर्व निहारै । सर्व योनिमें ब्रह्म विचारै ॥
 ऐसो जो कोई प्राणी होई । जीवन मुक्त कहावै सोई ॥
 काम क्रोधमें यह जग बंदा । ज्ञान न उपजै मूरख अंधा ॥
 निशिदिन ताहि मोह भरमावै । बहुरि बहुरि पाछे पछितावै ॥
 नारी सुत हित बन्दन लाया । धनसो मन जो बहुत लगाया ॥
 अंत काल कोई काम न आवै । होइ बिछोइ पाछे पछितावै ॥
 अन्तकाल जब संकट आवै । कालके हाथ सो कौन बचावै ॥

रोवै बहुत भांति तेहि कारण । मुये न जीवै बहुत पुकारण ॥
 प्रभु हिरदय नहिं मूरख जाने । मृतक आशा लागि भुलाने ॥
 मृतक रोवै भला न मानै । फिर यमराजा संकट ठानै ॥
 लोगन घरतै बाहर कीन्हा । की जारै की माटी दीन्हा ॥
 मृतक रूप बनी यह देही । करि ले प्रीतम प्रेम सनेही ॥
 जगके बन्धन जगमें छूटै । बहुत त्रास तेहि यम धरि लूटै ॥
 इन मों कहा मोह चितलाया । प्रभु इच्छा नहिं मूरख पाया ॥
 काकर पिता पुत्रको होई । नारी सुत हित लागै सोई ॥
 ता कारण यह दुख सुख मानै । अज्ञानी नहिं प्रभुको जानै ॥
 कबहु न सुमिरण प्रभुका करई । निशिदिन ज्ञान ध्यान परिहरई ॥
 ताते बहुत भांति दुख पावै । प्रभुकी शरण न कैसेहु आवै ॥
 यह तो लक्षण जग व्यवहाग । ताते बूढ़े मूढ गवाँरा ॥
 अर्जुन कर्म योग है नीका । संशय मेटो सकलौ जीका ॥
 कर्म करै शिर अपने लेई । कारण करतामैं चित देई ॥
 आपन कर्म धर्म नहिं छोडै । दुख सुख प्रभु इच्छा शिर वोडै ॥
 सदा अनन्द रहै सुख बासा । अन्तकाल वैकुण्ठ निवासा ॥
 क्षत्रिय धर्म तोहार जौ होई । कगौ संहार शत्रु पुनि सोई ॥
 तुम्हरे लरे सबै कोइ लरि हैं । ना तो निंदा तुम्हरी करि हैं ॥
 धर्म छांड़ि जनि पानक लेहू । युद्ध करनको मन चित देहू ॥
 कर्म संन्यास पञ्च अध्यायी । अर्जुन सुनिमन दुबिधा आयी ॥
 युद्ध करों की ज्ञान विचारों । केहि विधि अपनो जीव उबारों ॥

कबीर उवाच ।

धर्मदास यह काल तमासा । तासो चाहै मुक्ति निवासा ॥
 ज्ञानी अज्ञानी भरमावै । धर्म अधर्म दोऊ ठहरावै ॥
 धर्म अधर्म काल की पाशा । ताते न्यारा शब्द प्रकाशा ॥
 कर्म अकर्म मध्य है सोई । तुम जाने जानै सब कोई ॥

सद्गुरु संधि लखै को पारा । निगधार है अधर अधारा ॥

छन्द-गमि अगमि सद्गुरु लखायो निअक्षर सो पास है ।

कली फूलै बास धावै ऐसो शब्द निवास है ॥

फूल तिल जब संग कीन्हों सुवस बासा तब भई ।

हंस बासा शब्द लीन्हो शब्द रूपी सो सही ॥

सोरठा-शब्द मता है सार, सुर नर मुनि जानै नहीं ।

अंधा अध अचेत, अँधेरे न सुरति आनै नहीं ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदासमंवादे

कर्मसंन्यासव्याख्यानो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

छठे अध्याय ध्यान है योगा । सुनु अर्जुन मैं कहौ संयोगा ॥

जब लगि ध्यान योग नहिं करई तब लगि निर्मल चित नहिं करई ॥

ध्यान योग योग निजु साधै । मन वच कर्म नाम अवगाधै ॥

मन संकरुष विकरुष न जाके । दीन वचन कठोर न ताके ॥

निस्तरंग कछु उठै न इच्छा । सबमें पारब्रह्म उत पेच्छा ॥

पांच पचीश न कबहुँ धावै । निशिवासर प्रभु संग रहावै ॥

पांचौ इंद्रिय लिप्त न होई । ऐसे साधू विरले कोई ॥

गृहस्त जीवन में बासा लेई । उत्तम ठौर कुटी कर देई ॥

मानुष तहां दृष्टि नहिं आवै । आसन उत्तम तहां बिछावै ॥

प्रथम धरणी पर धरे मृगछाला । तापर कुश साथरी रसाला ॥

तेहि पर बैठे दृढ करि आसन । कैसो भांति न होइ उदासन ॥

स्वभा सम आसब दृढ आसन । सुरति निरति लै नाम संभारन ॥

जो यतने में आतम दरसइ । सो ज्ञानी प्रभु पूरण परसइ ॥

ऐसे जो कोई ध्यान लगावे । बहुरि योनि संकट ना आवे ॥

साधै निद्रा हार व्यवहारा । बहुत न भूदे नैन उघारा ॥
 संयम कै सो साधन करई । सो साधू आपदि निस्तरई ॥
 मन कह ज्ञान ध्यान में राखै । सुरति निरति सो अमृत चाखै ॥
 जो मन अन्त न धावा चाहै । घेरि घेरि अभ्यन्तर बाहै ॥
 तब अर्जुन अस पूँछन लागे । यह मन चञ्चल पल पल भागे ॥
 यह तौ काहू जाइ न पकरा । कौन उपाय जाइ मन जकरा ॥
 गगन वाइ जो गर्जत आवै । कैसे गगरी माहि समावै ॥
 यहि विधि मन चञ्चल यह भाई । तौ कैसे यह पकरन पाई ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कृष्ण अर्जन सो कहेउ बुझाई । ऐसे चञ्चल अस्थिर भाइ ॥
 जो यह मनको साधन करई । अभ्यन्तर लै फिरि २ धरई ॥
 चारों दिशा चलन नहि पावै । जबै चले तब माह समावै ॥
 पारब्रह्म देखै तब नैना । होई अनन्द परम सुख चेना ॥
 दीन दुखित कह दाया करई । अपनासा दुख चितमें धरई ॥
 दया भावसो हितकर बोलै । तृप्त करै साधुन कह सो लै ॥
 परका दुःख नेवारै सोई । ऐसी भक्ति परम गति होई ॥

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन कहै सुनु कृष्ण मुरारी । तारण तरण भक्त हितकारी ॥
 ऐसा साधु कोइ ना देखा । आपनसा दुख सब कह पेखा ॥
 आपन सुख चाहै सब कोई । औरन दुःख होय सो होई ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अर्जुन जो है परम सनेही । आपनिकरि नहि जानहि देही ॥
 पर सुख कारण आपु निरासा । दुख सुख देखै सकल तमाशा ॥
 भक्ति करै जो मन चित लाई । ताते परम पदहि में जाई ॥
 निर्गुण साधु जो पूरण ज्ञानी । ताकी महिमा वेद बखानी ॥
 वेद पुराण ते अधिक है सोई । ताकी पटतर वेद न होई ॥

वेद भाव संसार पसाग । परमभक्ति है अगम अपारा ॥
 तुम हू भक्ति करौ मन लाई । छाड़ौ माया मोहहि भाई ॥
 छठौ अध्याय इहां लगु कहिया । आतम संयम योग जो रहिया ॥

कबीर उवाच ।

कहे कबीर यह आतम जानी । इनते अधिक बखानों ज्ञानी ॥
 धर्मदास तुम ज्ञान उजागर । तुम तौ बसि हौ सुखके सागर ॥
 यह करनी जो कृष्ण बखानी । यह विधि धोरें आतम ज्ञानी ॥
 मैं तो ज्ञान अगम तोहि दीन्हा । काल कर्मको पापउ चीन्हा ॥
 ताते हंसा दृढ़ करि लेऊ । अगम अगोचर दीन्हेउ भेऊ ॥
 यह मन चञ्चल थिर नहि होई । कैसेहु विधि जो चाहै कोई ॥
 ताकी विधि मैं प्रगट सुनाऊँ । मनुवाँ इस्थिर करि दिखलाऊँ ॥
 यह मन पानी रूप स्रूपा । बुद्धि धाम पृथ्वी कर रूपा ॥
 चित जो वाइ स्रूपी होई । अहं अज्ञानी रहै समोई ॥
 पानी मही बगबरी भाई । चित पवन लै आहु उडाई ॥
 ज्यों २ पवन चलै झक झोलै । त्यों २ मनुवाँ चहुं दिशि डोलै ॥
 ताते यह उपचार सुनाऊँ । मनुवाँ कह अंतर ठहराऊँ ॥
 मनु पवना लै त्रिकुटी लेखे । अक्षर सुगति अमीरस चाखै ॥
 जौ लौ पवन रहित नहि होई । तबलगि मन अस्थिर नहि सोई ॥
 गगने पवन रहै पुनि भाई । त्रिकुटी गागरि लेइ समाई ॥
 पानी पवन संव जब होई । ब्रह्म अग्नि उपजावै सोई ॥
 मन औ पवन होइ जब मेला । परम पुरुष ते होइहि मेला ॥
 ना कहूँ आवै ना कहूँ जाई । तब यह मनुवाँ सहज समाई ॥

छन्द—चलन मनुवाँ अचल कीन्हो पवन अस्थिर जब भई ।
 मन पवन जब मला भया अमृत धारा वर्षही ॥

जिन्है सतगुरु शब्द मिलिया अमी सो हंसा पिया ।
 अजर अमर शरीर पायो बास सुख सागर लिया ॥
 सोऽगठा-संतो करो विवेक, शब्द सार गहु बूझिकै ।
 सुरति निरति सो देख, सतगुरु शब्द अपार जो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
 आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

कृष्ण कहैं अर्जुन सुनि लीजै । भक्ति इगारी मन चित दीजै ॥
 साथे अध्याय जो तुमसों कहउं । भक्तनमें हितकारी रहउं ॥
 मैं ही करौं करावौं भाई । तीनि लोक जहँ लगि निर्माई ॥
 मैं संघारौं मैं प्रतिपारौं । चौदह भुवन पलकमें टारौं ॥
 जहँ लगि पशु पक्षी जिव होई । मैं सबहीमें रहौं समोई ॥
 दानपुण्य आदिक सब माहीं । बनिज व्यापार करै सब पाहीं ॥
 देवी देव सकलौं मैं सब ही । भवसागर सकलौं जग हम ही ॥
 तीनि लोकमें विजय मैं सागैं । जब चाहौं तब फेर संघारौं ॥
 करौं संघार सृष्टि पुनि सोई । रहौं अलेप निरंजन होई ॥
 सगुणते निर्गुण मैं होइ जाऊं । फिर चाहौं सगुण होइ जाऊं ॥
 सगुण औ निर्गुण रूप हमारा । जहिते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
 अर्जुन सबमें मोहो जानो । कहा हमारा निजकै मानो ॥
 चारि प्रकार भक्ति जो होई । तामें ज्ञानी अधिक सो होई ॥
 रोग दुःखमें भक्ति जो करई । दुख कारण जो मोहि सुमिरई ॥
 दीन दुखी निशिदिन लव लावै । कब प्रभु मोकहँ भोग भोगावै ॥
 द्रव्य चहै जो द्रव्यहि स्वारथ । ज्ञानी चाहै मुक्ति पदारथ ॥

ज्ञानी सदा मोहि पहिचानै । मेरी भक्ति सदा सुख मानै ॥
 ज्ञानी अधिक ताहिते होई । भक्ति हि हेतु अधिक है सोई ॥
 अज्ञानी मोहि नर ही जानै । अलख रूप मोहि नहि पहिचानै ॥
 पूरण ज्ञान होइ जब भाई । तब ही निर्गुण अलख लखाई ॥
 देवी देवा सब नर पूजै । तिनहीं को करता करि बूझै ॥
 उनकी प्रीति देव होइ जाऊं । उनकी मनकामना पुगाऊं ॥
 कोइ न बूझै ख्याल हमारा । रचउँ सृष्टि पुनि करों संघारा ॥
 ज्ञान विज्ञान योग जो होई । सतवांध्याय सुनायो सोई ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर जगकरता आही । धर्मदास तुम चीन्हौ ताही ॥
 पुरुष तीनि लोक यह दीन्हा । तीनिहुँ लोक राज इन कीन्हा ॥
 सब जग माँहि करै यह राज । मन इच्छा कर सबका काज ॥
 इनते मुक्ति कहौ कस होई । देखहु आत्मज्ञान कै सोई ॥
 इनते मुक्ति होइ जो साजा । देह धरावै कवने काजा ॥
 धर्म अधर्म जीव अरुझाया । आवागमन महा दुख पाया ॥
 आवागमन न छूटै भाई । तीनि लोक राखै लपटाई ॥
 धारि अवतार जबें जग आवै । सकल सभा ऐस हि भरमावै ॥
 सृष्टि जहां लगि है संसारा । ऐसी भाति सब अवतारा ॥
 काहु मुक्ति होइ नहि भाई । राम कृष्णते को बड आही ॥
 उनहु आवागमन न छूटै । धर्मराज फिरि २ जग लूटै ॥
 धर्मराज यह खेल पसारा । औघट घाट मूँदि सब द्वारा ॥
 तीनि लोक ते जाने न पावै । स्वर्ग मृत्यु पाताल रहावै ॥
 धर्म कर्म ते स्वर्ग हि जाई । धर्म घटे मृत्यु मंडल आई ॥
 जैसे धरिया रहट सुभाऊ । ऊँचे नीचे फिरि २ आऊ ॥
 बन्धनते छूटे नहि पावै । ऐसे जीव सदा भरमावै ॥

सद्गुरु चौथे लोक निवासा । मिलै अँकूरी जो निजदासा ॥
सार शब्द है तेहि पहुँचाऊँ । तीनि लोक बन्धन मुक्ताऊँ ॥
पावैं सार शब्द निज बीरा । पहुँचै लोक जब छुटै शरीरा ॥
यमराजा तेहि निकट न आवै । चौरासी ते जीव छोडावै ॥
सार शब्द गहै निज डोरी । उतरे हंसा घाट करोरी ॥

छन्द-धर्म सेवा बहुत कीन्हो पुरुष दीन्हो राज हो ।

लोक तीनों राज पायो गर्वते अति गाज हो ॥

घाट अवघट सबै मूँदो कतहुँ नाहि निकास हो ।

पुरुषते दुइ ठानिकै सब जीव राखो पास हो ॥

सोरठा-ऐसी युक्ति बनाइ, पाप पुण्य फंदा रच्यो ।

चले लोक सो जाइ, सद्गुरु शब्द प्रताप जेहि ॥

इति श्रीमदुग्रगीताज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

अजुन उवाच ।

अर्जुन कहै सुनौ प्रभु मेरे । मैं तो अधीन सदा हौं तेरे ॥
कहौ बखानि ब्रह्मको आही । सो निज भेद कहौ मोहि पाही ॥
अध्यातम तुम कहौ बुझाई । कम नाम काहँको रहाई ॥
अद्भुत रूप बखानौ सोई । कछु मोसों जनि राखौ गोई ॥
अर्धनाम कहावै सोई । अर्धनाम जग काकर होई ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कहैं कृष्ण सुनु अर्जुन भेदा । तुमसों कहौं मैं वेद निषेदा ॥
ब्रह्म सदा जो रहै अविनाशी । और सृष्टि सकलौ पुनि नाशी ॥
रहित नाम अविनाशी होई । पूण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥

ना कटु आवै ना कटु जाई । सब घट माही रख्यो समाई ॥
 नहीं दृष्टि देखन महुँ आवै । सकल सृष्टिके माहिं रहावै ॥
 रूप वरण कछु वगनि न जाई । कोटि सूर्य तेहि तेज समाई ॥
 तिनका नाम सदा अविनाशी । रहै निरंतर अंतरवासी ॥
 अक्षय है सब जक्त पसारा । व्यापक रूप रहा भरिभारा ॥
 तिनकी भक्ति करे जो कोई । आवागमन कबहुं नहिं होई ॥
 अध्यातम आतम सो ज्ञानी । सबमें एकै ब्रह्म समानी ॥
 कम नाम करता है सोई । दुख सुख कारण करता होई ॥
 अद्भुत रूप सह्य है भाई । तेहि समान रूप नहिं भाई ॥
 कोटि सूर्यको तेज समाही । अर्द्धदेव सब देवन माही ॥
 रहो समाइ जो सकलौ छाई । अर्द्धनाम सकलौ जग लेई ॥
 व्यापक सदा सकलमें सोई । महा प्रलय जब आवै भाई ॥
 ल सो वर्ष अवधी रहई । रैनि दिवस छ मास जो होई ॥
 दिवस एक देवन कर सोई । छः मास अवर जब जाई ॥
 राति एक ताकर होइ भाई । ऐसे वर्ष दिवस नर होई ॥
 दिवस एक देवनकर सोई । तासे मास वर्ष गनि लेई ॥
 ऐसे वर्ष देवकर कहिया । अहनिशि एक ब्रह्म पुनि तहिया ॥
 दिवस एक ब्रह्माकर होई । चारि पहर चारिउ युग सोई ॥
 रातिउ ऐसे जान सुभाऊ । बरतै चारिउ युग परभाऊ ॥
 दिवस औ राति जब ऐसो जाई । पक्षमास पुनि वर्ष कहाई ॥
 सात वर्ष ब्रह्मा पर वानी । काल आइ सो करै तब हानी ॥
 ब्रह्म प्रलय जब आवइ भाई । रोमस रोम परै खहराई ॥
 जब प्रलय काल जब आई । एक रोम रोमस गिरिजाई ॥
 बहुत प्रलय ऐसे चलि गयऊ । आदि अंत काहू नहिं पयऊ ॥
 अष्ट अध्याय जो कहा बखानी । अक्षर ब्रह्म योग है ज्ञानी ॥

कहै कबीर सुनु धर्म निधीरा । बूझ भद तुम गहिर गभीरा ॥
जो यह कछू प्रभाव बखाना । पै निर अक्षर भेद न जाना ॥
जो निर अक्षर भद न जानै । कैसे सार शब्द पहिचानै ॥
जो निर अक्षर भेद हि पावै । सो त्रिलोक बंधन मुक्तावै ॥
अक्ष सार अपार जो होई । बिनु सतगुरु पावै नहि सोई ॥
सतगुरु मिलै शिष्यको जब ही । सार शब्द पावै पुनि तब ही ॥
हंस रूप ताकर पुनि होई । सो तौ हंस निनारा सोई ॥
यह जाने नहि ताकर भेदा । कितनों पढ़ै नर चारिउ वेदा ॥
सार शब्दका मर्म न पावै । सो कैसे सत्यलोक सिधावै ॥
जो मानै तेहि लोक पठाऊ । सार निरक्षर अलख लखाऊ ॥
खान प्रवान शब्द टकसाग । यमको चीन्है उतरै पाग ॥
घटवारा जब पावै चीन्हा । तब हंसन कह आवै दीन्हा ॥

छंद-सुरतिमंत जो हंस होवै ताहि दीजै पान हो ।

नत दशौ दिशा घाट रोकै मागि शब्द निशानि हो ॥

देखि हैं जब शब्द सांचा चीन्ह पावै लोकको ।

अपने कंधे तेहि उतारैं मोटि संशय शोकको ॥

सोरठा-धर्म हमहि सो कौल, कीन्हो अति आधीन हो ।

हंस शब्द सत बोल, निमिष माहि पडुँचाइया ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादेऽक्ष-

रयोगव्याख्यानो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

अर्जुन शास्त्र मतो नीका । कर्म धर्म सब कारज जीका ॥
शास्त्र वेद पुरान जो आही । मन वच कर्म अर्जन गढु ताही ॥

बहुत लोग मानुष मोहि जानैं । दुख सुख व्यापकमाही सानैं ॥
 बड़े भाग सो प्रानी होई । अंतर पवन रहौं मैं सोई ॥
 पवन सकल में वतैं भाई । बाहर भीतर फिरे सदाई ॥
 लित होइ पुनि रहै निनारा । ऐसा अद्भुत खेल हमारा ॥
 बहुत साधु एक करि पूजै । सर्व मध्य आतम कह बूझै ॥
 बहुतक प्रीति भाव जो जानैं । सादेब सेवा हित कै मानैं ॥
 बहुतक तीनो देवन मानैं । अवर सकल मिथ्या करि जानैं ॥
 मोकदयहि विधि जो कोइ ध्यावै । तेहि विधि माइ परम सुख पावै ॥
 सर्व व्यापक मैं हौं भाई । मोहि विन दूजा और न कोई ॥
 मेरे मित्र दुष्ट नहिं कोई । जो ध्यावै पावै पुनि सोई ॥
 एक भाव मैं सबसो रहेऊ । जैसे अग्नि भाव सो कहेऊ ॥
 जबै काल जड़ आवैं भाई । बैठे लोग तापन कह भाई ॥
 चहुँदिशि लोग अग्नि बिच होई । सब तापै काया नर लोई ॥
 अग्नि काहु कै मित्र न जानै । और न काहु दुष्ट हि मानै ॥
 सब कह लागै एक सम भाई । ऐसे रहौं मैं सहज समाई ॥
 जो कोइ पूजा देवन लावै । सो नर देवके लोक सिधावै ॥
 जो ऐसा होइ भक्त हमारा । ता कह पठवउँ स्वर्ग दुवारा ॥
 जो कोइ मोसे चित्त लगावै । सुख संपति बहु शोभा पावै ॥
 ऋद्धि सिद्धि बहुतैं कै देखूं । आपन कै मैं ताकह लेऊं ॥
 सदा सर्वदा बात न हेरूं । दुख संताप ताहि कर फेरूं ॥
 अर्जुन परम भक्ति मोहि भावै । जो कोइ मोसों मन चित लावै ॥
 नौ अध्याय इहां लगु होई । राज योग गून है सोई ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । बहु विधि कृष्ण जो करें तमासा ॥
 कर्म धर्म कहि जग समुझावैं । अलक पुरुष कैसे लखि आवैं ॥

ज्ञानवंत तुम धर्म निआगर । सत सुकृत गहु परम उजागर ॥
 करी विचार संतकी रीती । मन बच करु सतगुरु परतीती ॥
 इन्ह तौ शास्त्र ज्ञान विचारा । कम फंद जीवन्ह सब डारा ॥
 कोइ भक्ति जो इनकी करई । ऋद्धि सिद्धि सुख संपति लहई ॥
 बहुत भांति तेहि देह बड़ाई । राज पाट इन्द्रासन लाई ॥
 आवागवन न मेटा जाई । बहुविधि चीन्हो मन चितलाई ॥
 दाता भुक्ता होवे आपै । पै कोऊ नहिं छूटा पापै ॥
 आवैं जाइ सकल जग लोई । कबहुं न छूटै बंधन सोई ॥
 बहुविधि चीन्हो मन चितलाई । आवागवन न मेटा जाई ॥
 बंधन सतगुरु तुम्हरो तोरा । तुम कह नहिं व्यापै यम चोरा ॥
 सतगुरुका है पंथ अपारा । जो बूझै सो उतरै पारा ॥

छन्द--धर्मदास तुम बूझि देखो भेद सतगुरु अगम है ।

तीनि लोक अरुझाई कारण वेद शास्तर सो कहै ॥

बूझि देखो अंग सब मैं आयों तोरन फंदको ।

हंसको मुक्ताय यमसो मेटिहौं दुख द्वंदको ॥

सोरठा--सतगुरु शब्द अपार, वार पार कोइ ना लहै ।

हंस शब्द आधार, ताहि मुक्ति पाछे फिरै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

राजवियाराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

महाबाहु अर्जुन सुनु भाई । दस अध्याय कहेउँ अर्थाई ॥

विभूति योग मैं तोहि सुनाऊं । सकलरूप तोहि वरनि सुनाऊं ॥

जल थल पूरण मैं ही व्यापो । कीट पतंग सर्वमें आपो ॥

मेरी गति मति कोइ न जानै । सबै सृष्टि नागयण मानै ॥
 ऋषि मुनि देव देवता भाई । उनहूँ मेरी गति नहिं पाई ॥
 मैं तो गति मति सबकी जानौं । व्यापि रह्यो मैं सकल जहानौं ॥
 देवि देवता आदि जो मैं ही । ऋषि मुनि सृष्टि अवतारजु लेही ॥
 मोहिते आदि और नहिं कोई । सबके आदि करा रचि सोई ॥
 पिताकी खबरि पुत्र नहिं जानै । कैसे पितुकी आदि बखानै ॥
 आदि अन्तको मेरी पावै । जग रचना सब पुत्र कहावै ॥
 विभूति रूप संक्षेप जो कहिया । अर्जुन पूछ कृष्ण पुनि कहिया ॥
 सब व्यवहार विभूति सुनावौ । रंचक मोसे कछु न दुगवौ ॥
 कृष्ण कहै सुनु कुतिकुमारा । तोसों कहौं सकल विस्तारा ॥
 पहिले सकल जोति जग जो है । शशि सूर्यकी कीरनि मोहै ॥
 सूर्य रूप मेरो है भाई । दूजा भाव जनावौ जाई ॥
 शीतल पूरण निर्मल चदा । है मेरो यह रूप अनंदा ॥
 बलीदान यज्ञ जो ठानो । बावन रूप मेरो पहिचानो ॥
 सिरजा पवन सबै सुखदाई । मैं ही पवन रूप हौं भाई ॥
 चारि वेदमें साम जो वेदा । मेरो रूप सुनो तुम भेदा ॥
 व्यास रूप मेरो है भाई । नारद भाव धरउं मैं आई ॥
 देवन माहि इन्द्र पुनि मैं हौं । दानी बलिराजा सो मैं हौं ॥
 विषधर माहि वासुकी हम ही । ईश्वर माहि महेश्वर हम ही ॥
 इन्द्रिय भुक्तौ मनसो मैं ही । राजन माहि राज करौं मैं ही ॥
 मिरगन्ह मध्य सिंह गति मेरी । वृक्षनमें पिप्पल मोहि हेरी ॥
 नदी माहि हम ही हैं गंगा । समुद्र रूपमें लहरि उतंगा ॥
 सुनिवर कपिल हमी हैं भाई । परशुराम योधा हौं भाई ॥
 नरसिंह रूप जो मेरो होई । रामचन्द्र तन रूप जो सोई ॥
 दत्तात्रय आनंदित रहऊं । ऋषिन मध्य पाराशर अहऊं ॥

जल जीवन जलसाइ कहाई । मेरो रूप सुभाव रहाई ॥
 ज्वारिन महुँ मैं जुवा कहावा । जुवा रूप मेरो रूप सुभावा ॥
 जहँ लगि जगमें होइ लराई । मेरो रूप लराई भाई ॥
 जग परपंच जहाँ लग होई । परपंच रूपमें रहौँ समोई ॥
 वाद विवाद करै जो ज्ञानी । वाद रूप मोकहँ पहिचानी ॥
 शंकर रूप मोर है भाई । मृत्युकालमें रहौँ समाई ॥
 पाप पुण्य धारौँ दुइ देही । कर्म धम रचना है एही ॥
 जग रचना विभूति मेरी होई । जल थलमें मैं रहौँ समोई ॥
 कहँ लगि वणों वरणि बखानौँ । सब वसुधामें मोही जानौँ ॥
 मोहि छोडि कोइ और न दूजा । तीन लोकमें मेरी पूजा ॥
 देवी देवता पूजा लावैं । सो सब पूजा मों कहलावैं ॥
 विभूति रूप अध्याय है दशवाँ । इह लगि भाव बतायउँ दशवाँ ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनौ चितलाई । धर्मदास तुम लेहु अर्थाई ॥
 तीनि लोक नायक भगवाना । तिन कह पुरुष दीन्ह रजधाना ॥
 ताते कीडा करै अनंदा । खेल अनेक खेल गोविंदा ॥
 तीनि लोक बाजी दइ राखा । परपंची अपने मुख भाखा ॥
 सत्य कहइ सत्य भाव लखावैं । करि प्रपंच जीवन भरमावैं ॥
 जीव जो मूल बीजके आही । इन पाया सब पुरुषके पाही ॥
 बीज आदि तिहुलोक जो फूला । आपुहि जानै पुरुषहि तूला ॥
 करि अभिमान पुरुष विसरावा । आपुहि पूरण पुरुष कहावा ॥
 सर्वमें व्यापक आपुहि रहई । पुरुष भेद नहिं काहु सो कहई ॥
 भेद कहै उजरै पुर तीनो । आपन थापन ताते कीनो ॥
 चारिहु वेद नेति जो गावैं । सद्गुरु रहित पुरुष बतलावैं ॥

जीव जन्तु राखें अरुझाई । बीज पुरुष जे दीन्हो भाई ॥
जब नहि बीज पुरुषपहँ जाई । तबै पुरुष हम कहँ उपजाई ॥
बीज अंकुरी लोक लै आवौ । धर्मराजते हंस छुडावौ ॥
सेवा वसि वहि दीन्हा राजू । अब मैटो तो सुकृतहि लाजू ॥
सुत हमार भया वरियारा । जेहि दीन्हों तिहुँलोकक भारा ॥
तुम अंकुरी सेवहु जाई । बार २ में कहौ बुझाई ॥
ताते में संसारहि आवा । पुरुष शब्द टारो नहि जावा ॥
नाहि तो तीनौ लोकहि तारौ । धर्मराज ते सबै उबारौ ॥
जो जन अंश पुरुषके आही । सो सब आवै हमरे पाही ॥
धवर सकल जग काल बसेरा । नित २ प्रलय होत झकझेग ॥
यहि कर काल पुरुष दियोनामा । तीन लोकते न्यारा धामा ॥
अध्याय एकादश आगे होई । काल स्वरूप बखानो सोई ॥
धर्मदास मन माहि विचारो । काल रूप सब भाव निहारो ॥
जो तुम कहौ पुरुषकी आशा । सद्गुरु शब्द करौ विश्वासा ॥

छंद-हंस कारण पुरुष पठयो तबै विनती में कहौ ।

धर्म है अति बली तिहुँपुर सोई दुतिया करि रहौ ॥

जाऊं भवसागरहि जो बहु भांति मोसों युधि करै ।

यह सुनि पुरुष सत्य शब्द दीन्हों धर्मराज जेहि ना डरै ॥

सोरठा-सुनतै शब्द सदेश, सुरति निरति हंसा गहो ।

पूरण पुरुष संदेश, बहुरि धरौ जग देह नहि ॥

इति श्रीमदुग्र गीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

विभूतियोगव्याख्यानो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन कृष्ण सो बिनती ठानी । हे स्वामी तुम अन्तर्यामी ॥
 दश अध्याय तुम वरणि सुनायो । ज्ञान विज्ञान जो मोहि बतायो ॥
 संन्यासकर्म और वाक्य सुनायो । आत्म संयम योग बतायो ॥
 प्रवृत्ति निवृत्ति जो मारग भाषा । कर्म योग मन दृढ करि राखा ॥
 यह सब सुनि निर्मल भयो अंगा । अब मोहि दर्शन भयो उमंगा ॥
 होउ दयाल विराट देखावौ । मति मोकई तुम दूरि बहावौ ॥
 जो मोहि शक्ति न देखत होई । तौ अब शक्ति दीजिये सोई ॥
 तुम ठाकुर हौ अंतर्यामी । अब दर्शन बिन रहौ न स्वामी ॥
 अहो दयाल कृपा-निधि-सागर । दीनबंधु तुम पतित-उजागर ॥
 तब हरि बोले चतुर सुजाना । इन नैनन्ह नहि दर्शन जाना ॥
 तुम तौ हौ निज भक्त हमारे । दर्शन तुम कह देउ पियारे ॥
 यह सरूप काहु नहि देखा । इंद्रादिक सुर नर मुनि शेषा ॥
 सो दर्शन तुम देखा चैहौ । तीनि लोक हलकंप बढैहौ ॥
 देखौ कालरूप जब मोरा । अर्जुन तुम तब रहौ न ठौरा ॥
 डरपो बहुत होइ डर भारी । डरपै लोग सकल संसारी ॥
 कहैं अर्जुन सुनु कृष्ण मुरारी । प्रथम देहु दृढता मोहि भारी ॥
 जो मैं डरौ दरसको करई । विनु मारेही मृतक होइ रहई ॥
 सोइ दृष्टि मोहि देव गुसाई । जेहि दरशे परसौं तुम पाई ॥
 दिव्य दृष्टि अर्जुन कहैं दीन्हा । अर्जुन है मम दरश अधीना ॥
 धारो रूप अकाश पताला । महा स्वरूप भयंकर काला ॥
 माथ अनेक अनेकन्ह नयना । कर्ण अनेक बहुत मुख बयना ॥
 नाक अनेक रु दंत अनेका । चितवन दृष्टि मारि है वेगा ॥
 निकसि दाढ़ बाहेर मुख भारी । तिन देखत जिव नाहिं सँभारी ॥

वदन अनेक भरे औ रीते । ऋषिमुनिवर तहँ भये विपरीते ॥
 भुजधारी बहु बाहु विराज । ऐसे कैसे दग्शन राज ॥
 पाव पताल रहा जब जाई । शीश अकाश सातये भाइ ॥
 भूषण भांति २ के छाजें । मुकुट अनेक शीश पर राजें ॥
 सूर्य चंद्रमा तहां रहाई । ऋषिमुनिवर तहँ विनती लाई ॥
 जहँ लगि देवी देवता आहीं । सब देखो तिनके मुख माहीं ॥
 अर्जुन देखि अचंभौ कीन्हा । अति डरि भये बहुत आधीना ॥
 देवता ठाढ़े अस्तुति करहीं । भौ व्यापै विनु मारे मरहीं ॥
 किन्नर यक्ष गुणी सब ठाढ़े । कैपे सबै देखिक गाढ़े ॥
 राक्षस देखत भागे जाहीं । कोइ नेरे कोइ दूरि पगहीं ॥
 कोइ जन अस्तुति करै मनुहारी । अब रक्षा प्रभु करौ हमारी ॥
 कोइ एक जन दुरि परिहरहीं । कोइ जन निडुरी दंडवत करहीं ॥
 ऐसे सृष्टि सकल जग देखा । तहवां रहे समाइ विशेषा ॥
 औ मुख देखा बहुत भयावन । जानौ अब चाहत है खावन ॥
 मुखमें तीनि लोक जो देखा । तहवां रहे समाइ विशेषा ॥
 जहँ लगि साधु असाधु कहावै । सो सब ताके मुखमहँ आवै ॥
 दुर्योधन देखा मुख माहीं । भीष्म द्रोणाचार्य जो आहीं ॥
 योधा चले सबै मुख माहीं । कौरौ पाण्डव उदर समाहीं ॥
 कोस अड़तालिस कटक जो रहिया । सो सब मुखमें देखो तहिया ॥
 संसारी त्रैलोक पसारा । सो सब मुखके मध्य निहारा ॥
 नदी आवै जस एकै धारा । सागर माहिं धसे सब खारा ॥
 ऐसे जग सब उदर समावै । मुख माहीं सबही चलि आवै ॥
 जैसे जोत चांदना होई । जीव जन्तु सब लेइ समोई ॥
 केतक डाढ़न माहीं अटके । केतक भागे फिरत जो भटके ॥
 कोइ कतहुँ जाने नहिं पावै । बहुरि २ मुख माहिं समावै ॥

देखत अर्जुन बहुत डराये । मनमें धीरज नेक न आये ॥
 विनय दंडवत करि बहु भाई । क्षमा करौ अब मोहिं यदुराई ॥
 मोकहैं संभरन दे यदुराई । चित मेरो विभ्रम होइ आई ॥
 तुम तौ पूरण पुरुष हौ साई । रूप समेटो चित डेराई ॥
 काल रूपते बहुत डेराऊँ । कृपा करो जिय मोर जुड़ाऊँ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कहैं कृष्ण अर्जुन सुतु बयना । डरपै जनि मंदो दोउ नयना ॥
 तुम काण यह भेष बनावा । और काहु देखो नहिं पावा ॥
 तुम तौ क्षत्रिय बहुत पियारे । तुम कारण यह रूप सवारे ॥
 अस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई । इन कह मारौ बहु विधि भाई ॥
 जो कोइ युद्ध करन कहैं आवै । राज धर्म तेहि मारि गिगवै ॥
 इन सबको हम मारिजो गखो । सो सब देख्यो अनी आंखो ॥
 ए सब हमरे मुखके माहीं । तुम कहैं दूषण एकी नाहीं ॥
 तुम्हरे यश कह कारज कीन्हा । अब लगि राखा तुम्हरे लीन्हा ॥
 आगे यही मृतक जो आहीं । तुम जग यश लेने कस नाहीं ॥
 जगमें महा बाहु तुम होहु । अब तुम इन कहैं मार्ग विगोहु ॥
 देखै युद्ध सकल संसाग । यश कीरति तब होइ उदाग ॥
 अरजुन डगपत बिनती कीन्हा । तुम कर्ता मैं सदा अधीना ॥
 अब लगि तुमकहैं मैं नहिं जाना । अब जो कहौ सोइ परमाना ॥
 विनय करौ तुम सुनहु गोसाई । बहु अपराध भये मोहिं साई ॥
 तुम संग सखा रूप हम डोलें । ऊँच नीच बोल जो बहु बोलें ॥
 तुम तौ पिता सकल के होऊ । प्रालैं मात पिता सुत सोऊ ॥
 बालक लाख दोष जो करई । मनमें पिता रोष नहिं धरई ॥
 तुमसो बैन कठिन मैं भाषा । सारथिके अपने रथ राखा ॥
 कछू चूक हमसे जो होई । सो अपराध क्षमा कर सोई ॥

रूप देखावहु श्याम सरूपा । वेगि छिपावहु काल सरूपा ॥
 मेरो जीव न धीरज धरई । अबहीं जानौ भक्षण करई ॥
 दया रूप अपनो दिखलावो । चित वित मेरो ठौर मिलावो ॥
 ना तौ चित वित मेरो जाई । कैसहु धीरज मोहि न आई ॥
 कालरूप तब लीन्ह सकेली । कृष्ण रूप धरि तब ही खेली ॥
 शंख चक्र गदाधर जानी । मोर मुकुट पीताम्बर तानी ॥
 विश्वरूप सम्पूरण भयऊ । अध्याय एकादश लगि कहऊ ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । कर कैसे यह काल तमाशा ॥
 यह जग अंधा उलटी रीती । अंधा मोल न फूटि मसीती ॥
 अंधरे पंडित पढ़े पुराना । पढ़ि पढ़ि काहुँ भेद न जाना ॥
 कृष्ण जो निजमुख गीता भाषा । काल स्वरूप देखायउ आखा ॥
 तबहुँ न मूरख कालहि चीन्हे । ज्ञान हीन है मतिके हीने ॥
 ज्ञान अगम में बहुत पुकारा । सब झूठे मिलि कहै लबाग ॥
 मूरख सांच झूठ नहि जाना । कैसे गुरू भेद पहिचाना ॥
 भेद बिना सो जन्म गवांवा । बार बार भग द्वारे आवा ॥
 आवत जात महा दुख होई । जन्म बहुत धरि जाइ विगोई ॥
 सतगुरु शब्द चीन्ह जो पावै । अजर अमर घर हंसा पावै ॥
 धर्मदास सम हंस सुजाना । झूठो सत्य लेहु पहिचाना ॥
 सांच झूठमें रहा छिपाई । चीन्हो ताहि गही चित लाई ॥
 झूठे त्यागि सांच कह लागो । सत्य मुकृतमें तन मन पागो ॥
 सत्यहिते जिव उतरै पारा । सत्य शब्द जियको कड़हारा ॥
 सत्य गहै सत्यै मुख भाखै । अभ्यन्तर सत्यहि गहि राखै ॥
 सत्यै कर्म धर्म तुम करहु । कर्म भर्म दोऊ परिहरहु ॥
 सत्य व्यवहार सत्य मुखबैना । सत्य है लेन सत्य है देना ॥

सत्य सत्य तुम वर्तहु भाई । यह उपदेश हमारो भाई ॥
 यह संसार सत्य नहि सुझै । सत्यहि बूझै झूठ अझै ॥
 जैसे नलिनी सुबना गहई । ऐसे वह जग फंदा रहई ॥
 सत संगति ते ठठिकै भागै । नाच पवारे मन अनुगगै ॥
 विषय वासमें तन मन खोवै । उत्तम देही जानि विगोवै ॥
 यह संसार कालंकर फन्दा । विन सतगुरु नहि छूटै बंदा ॥
 जब अक्षर निरअक्षर जानै । सतगुरु शब्द करे परवानै ॥
 सार शब्द में आनि पुकारा । जो बूझै सो उतरे पारा ॥

छंद—वहो बहुविधि बृद्धि । खों धर्म दारुण काल हो ।

वद पुराणमें सार गी ॥ जस कह्यौ विकराल हो ॥

विश्व सब भोजन करै यह सर्व वसुधा पाल हो ।

दया जाके ताहि आवै सब जीव राखै हाल हो ॥

सोरठा—ज्योति सहृपी काल, सदा अखंडित लव वरै ।

कबहुँ न होय दयाल, जीवजंतु सब लै जरै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

विश्वरूपव्याख्यानो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

अजुन उवाच ।

कहैं अर्जुन सुनु अन्तर्यामी । पूरण पुरुष अगम तुम स्वामी ॥
 ज्ञान सृष्टि भक्ति अधिकाई । निर्गुण सगुणमें को अधिकाई ॥
 यह संशय उपजे जिव मोरा । कृपा करो तुम करौं निहोरा ॥
 अर्जुन जो पूछेउ परभाऊ । सो अब प्रकट बखानौ दोऊ ॥
 ज्ञानी अधिक करे जो ज्ञाना । निशि वासर रहै ज्ञान समाना ॥
 भक्ति करे जो मन चितलाई । निशि दिन सुमिरै हमकहैं भाई ॥
 बहुत भांति कै सेवा लावै । प्रेम मग्न मेरो यश गावै ॥

सुख संपति सुत भवन न भावै । काम क्रोध मद लोभ बहावै ॥
 ऐसा भक्त मंग मन भावै । मोक्ष मुक्ति परम पद पावै ॥
 ज्ञानते अधिक भक्ति है भाई । निशिदिन मोमें रहा समाई ॥
 निगुण सगुण है रूप हमारा । वह निरूप यह खेल पसारा ॥
 निगुण ब्रह्म सकल घट माहीं । सर्गुन रूप हमारे आहीं ॥
 बहुत साधु निर्गुण कह धावै । कर्म धर्म ले दूरी बहाव ॥
 निर्गुण भक्ति बहुत अति भारी । कोई कोई विगले हैं व्रतधारी ॥
 छोंडे इंद्री तन मन कर्मा । मनसा कबही जाइ न भर्मा ॥
 पंच पचीसो को परमोवै । अभ्यन्तर आत्मको शोधै ॥
 संकल्प विकल्प जब मनसे छूटें । काल कुश नाता कहैं लूटें ॥
 सदा नाम जो रहै लवलीना । सो साधु पुनि ब्रह्महि चीन्हा ॥
 पाग्रह है अलख अपारा । हाथ पाउं नहिं देह सँवारा ॥
 क्षर अक्षर कबही नहिं होई । पूरण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥
 अलख रूप सदा अविनाशी । रहित चिंत अचित उदासी ॥
 ऐसा ब्रह्म जो रहित अकेला । सो साधु है अविगति मेला ॥
 ऐसे निर्गुण भक्त पियारे । तिन अपना निज कारज सारे ॥
 ताते कठिन भक्ति यह भारी । सगुण भक्ति है मोहि पियारी ॥
 शुचि संयम एकादशि करई । मन वच कर्म मोहि चित धरई ॥
 अर्पणकै सब प्रभुके नामा । सुफल होइ सब पूरण कामा ॥
 सदा सर्वदा मो कहैं ध्यावै । मोक्ष मुक्तिमाहीं फल पावै ॥
 और सेवा सुमिरण जो करई । निशि दिन मोकहैं चर्चत रहई ॥
 ध्यान धरै जो श्याम सारूपा । मोर मुकुट शिर बनो अनूपा ॥
 पीत वसन बेजती माला । कानन कुंडल नैन रसाला ॥
 ऐसी भांति ध्यान जो करई । सो साधु भवसागर तरई ॥
 ए अर्जुन मोहि सब विधि भावै । भक्ति करै मेरो यश गावै ॥

हम तो प्रेम प्रीति के भूखे । साधु संत कबही नहिं दूखे ॥
 हमरी आज्ञा साधु जो धावै । महा पदारथ मोक्ष सो पावै ॥
 जो तुम सो कछु भक्ति न होई । मानहु मोर कहा निगु सोई ॥
 क्षत्री धर्म न छोड़िय भाई । एहिते तुम पुनि पहुचो जाई ॥
 धनुष बाण तुम लेहु उठाई । युद्ध करहु तुम अर्जुन जाई ॥
 मनमें मोह कछु नहिं कीजै । कारण करतामें चित दीजै ॥
 जो तुम युद्ध जातिकै आवौ । पदवी अटल परम पद पावौ ॥
 द्वादश अध्याय भक्ति जो भाई । कृष्ण बखाना यह अध्याई ॥

कबीर उवाच ।

कहैं कबीर धर्मनि हितकारी । भक्ति कहेउ जो कृष्ण मुगरी ॥
 निर्गुण भक्ति सत्य है आदी । सगुण भक्तिहु जन्म न वादी ॥
 पै हम अगम बखानी ऐसी । करे विवेक विचारै तैसी ॥
 निर्गुण सगुण दोउ उर झेला । बूझेगा कोइ संत सुहेला ॥
 क्षर अक्षर माया है भाई । निरअक्षर सद्गुरु समुझाई ॥
 ताकर भेद न काहु पाया । मूख धरि २ जन्म गवाया ॥
 सद्गुरु शरण जीव जो आवै । काल फांसते जिव मुक्तावै ॥

छन्द—निर्गुण सगुण दोउ छांडौ संधि सद्गुरु चित धरो ।

सार शब्द अपार अविगति क्षर अक्षर निर अक्षरो ॥

भद बूझो अगम गमि करि कछु न संशौ घट रहो ।

सोई हंसा अमी पीवै पुरुष को दर्शन लहो ॥

सोरठा—सोइ भक्ति निज साग, जेहिते पुरुषहि परशिहो ॥

बहु विधि कहौ पुकारि, भक्तिहीन दरशे नहीं ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे भक्ति-

योगव्याख्यानो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अर्जुन सों बोले गोपाला । निर्मल ज्ञान सुनौ यहि काला ॥
 माया ब्रह्म सदा संयोगा । माया संग जीव पुनि भोगा ॥
 तीनिउ गुण मायाते भयऊ । रजगुण तमगुण सतगुण भयऊ ॥
 रजगुण ब्रह्मा सृष्टि पसारा । सतगुण पोषण विष्णु विचारा ॥
 तमोगुण रुद्र सँघारै सोई । तीनिउ पुत्र मायाके होई ॥
 पृथ्वी तेज वायु आकाशा । जल मिलि पांचउ तत्त्व प्रकाशा ॥
 दश इंद्री कीन्हो बंधाना । कर्म पांच २ है ज्ञाना ॥
 मनबुद्धिचितअहंकारजोकीन्हा । इच्छा दोइ यक धीरज चीन्हा ॥
 दुख सुख क्षेत्र जो कीन्हा माया । क्षेत्रज्ञ पुरुष अविगति समाया ॥
 क्षेत्र देह क्षेत्रज्ञ जिव होई । चेतन जीव अचेत समोई ॥
 देह धरेते जिव दुख पावै । माया जड कछु शोक न आवै ॥
 आदि अनादि ब्रह्म औ माया । कारण सृष्टि धरे दुइ भाया ॥
 जैसे वृक्ष २ की छाया । वृक्ष विना छाया नहि माया ॥
 ऐसे ब्रह्म सदा यक संग । कारण सृष्टि रच्यो अर्धङ्गा ॥
 अर्जुन व्यापक जीवहि जानो । अतो न न्यारो ब्रह्म पिछानो ॥
 जीवातम माया भयो अंगा । परमातम देखहु सब संग ॥
 पारब्रह्म सो लिप्त न होई । हाथ पांव इंद्री नहि कोई ॥
 सर्वेन्द्री जाके चहुँ ओरा । जहां तहां परकट सब ठौरा ॥
 नैन चहुँ दिशि देखै सोई । कान सर्व गुण सुनै है जोई ॥
 मुख सकलौ जो स्वायंस्ववावै । पाव पवनते अधिक जो धावै ॥
 हाथ ऐसे जो रचै संसारा । नासा सकल वास विस्तारा ॥
 जो कहिये तौ सकलौ सोई । नाक होइ तौ कछु न होई ॥
 जाके कोई पुण्य न पापा । अलख रूप सो आपै आपा ॥

ऐसे पारब्रह्म पहिचानौ । ताकी महिमा वेद बखानौ ॥
जो कोइ साधू साधन करई । इंद्री त्यागे गुण परिहरई ॥
कामक्रोध मद लोभ न आवै । तंतु प्रकृति ले दूर बहावै ॥
माया रहित ब्रह्म है सोई । ताको आवागमन न होई ॥
माया लित रहै संसारी । लोभ मोहमें भूले भारी ॥
कैसे नही ब्रह्म कहैं बुझै । अंध नयन हृदये नहिं सूझै ॥
सुख संपति हित चितसो गइई । ता परताप नर्क सो परई ॥
सूकर श्वान जन्म सो धरई । माया लीन सदा सो करई ॥
चौरासी कर्म जेहि गुण होई । निष्कर्महि जानै नहिं कोई ॥
आत्म परमात्म नहिं जानै । पारब्रह्म मन कबहिं न आनै ॥
रहत समीप सदा सुख सोई । न्यारा कबहीं नाहिं विछोई ॥
जैसे सूर्य जो रहै अकासा । ऐसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ है वांसा ॥
कर्म लित जिव नाम धराया । पारब्रह्म संयोग बनाया ॥
माया विना ब्रह्म जो होई । पारब्रह्म पुनि कहिये सोई ॥
आपुन आपा खोइ भुलाना । माया संग सदा सुख माना ॥
ता कारण भमें चौरासी । फिरि २ भवसागरके वासी ॥
ताते निर्गुण भक्ति न होई । सगुणै भाव बतायो सोई ॥
कर्म करिय करि निर्मल होई । ऐसे तारो सब नर लोई ॥
मन वच कर्म मोहि चित राखै । मेरो ध्यान सदा अभिलाषै ॥
यहि प्रकार नर मोकहैं गावैं । सुख संपति धन लक्ष्मी आवैं ॥
ब्रह्म यज्ञ त्रैदश अध्याई । क्षेत्र क्षेत्रज्ञहि वरणि सुनाई ॥

कबीर उवाच ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा भेद सो काल प्रकाशा ॥
कहिं २ निर्गुण सगुणै ब्यावैं । पारब्रह्मते दूर बहावैं ॥
काह कहौ कहंलगि गोहरावौ । अंधहि मारग कैसे पावौ ॥

दिवसहि लोक न मूझ भाई । सूर्यहि कैसे दूषण लाई ॥
 ज्ञान अपार कण्ठ प्रकाशा । जैसे सूरज जोति अकाशा ॥
 चहुँदिशि जो उज्याग आही । नैन विना अंधियारा ताही ॥
 ज्ञान दृष्टि होई नहि मूझ । सतगुरु मार्ग कैसे बुझै ॥

छन्द—ब्रह्म ज्ञान कहि २ सुनाव बहुरि आन कर्म सो ।

आपकोही स्थापि बहु विधि सब जीव राख भर्म सो ॥

कर्म धमहि भर्म त्यागै बूझि सतगुरु भेद को ।

अगम मार्ग वेदने जो बूझि वेद निषेद को ॥

योग्या—एसो सतो अपार, वेद पार पावै नहीं ।

पुरुष शब्द नीनाग, पुष्प बाम जैसे रहे ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमने कबीरधर्मदामसंवाद

अत्रक्षेत्रज्ञनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

बोले कृष्ण भक्त—हितकारी । अजुन सो अस वचन उचारी ॥
 आगे बहुत ज्ञान समुझाया । पै अब अगम करो तुम दाया ॥
 जौन ज्ञान सुर नहि पहिचान । महिमा चारो वेद बखानै ॥
 अब तुम हृदया धरउ छिपाई । एसो ज्ञान नहि प्रकटै भाई ॥
 प्रथम तत्त्व महि पुरुष सवारा । प्रकृति तत्त्व तेहिमें अनुसारा ॥
 कर्म बंध महि तत्त्वहि रहई । कम विधी बंधन सो गहई ॥
 सब उत्पति महि तत्त्वतै होई । प्रलय काल सब ताहि समोई ॥
 आदि अनादिते महि चलिआई । काहू जाकी अंत न पाई ॥
 महि तत्त्व रूप ब्रह्मकी इच्छा । माया ब्रह्म समीप समीक्षा ॥
 ताते तीनिउ गुण जो भयऊ । सतरज तमगुण उत्पन कियऊ ॥
 ताके लक्षण करौ बखाना । तीनिउ व्यापक सकल जहाना ॥

प्रथमैं सतगुण सत्तै जानौ । शील लाज सन्तन हित मानौ ॥
 प्रभुकै सुमिरण रहै समाई । भक्ति भाव सन्तन सुख दाई ॥
 शुचि संयम स्नान जो करई । जप तप दान पुण्य मन धरई ॥
 निशिदिन चित्तरहै स्थिर भाई । सत्य संतोष जो सदा रहाई ॥
 यह लक्षण सत्त्वगुण जो जाना । ताकी गति संक्षेप बखाना ॥
 ऐसी भांति काच जो होई । स्वर्ग लोक सुख भुक्तै सोई ॥
 बहुत भांति सो सदा अनन्दा । सत्त्वगुण विष्णुभाव गोविंदा ॥
 रजोगुण ब्रह्मा भय उतपानी । भूषण भोग सदा रुचि मानी ॥
 बहुत भांति कै वस्तर भावै । घोडा हाथी रीझ बढ़ावै ॥
 बहुत दामकै चाहै गाठी । बुद्धि फिरै भक्तन सो नाठी ॥
 जहां तहां में मेरी बोलै । सुख संपति कह धावा डोलै ॥
 सुखसंपति कछु काम न आवै । हरिबिन मूरख जन्म गवावै ॥
 यह लक्षण रजगुण के भाई । अन्तकाल मध्यम गति पाई ॥
 तमोगुण रुद्र धरो जो देही । काम क्रोधके सदा सनेही ॥
 निशिवासर रहै अहंलपटाना । आपन सम काहू नहिं जाना ॥
 क्रोधहि लिये करै सब कर्मा । भीतर रोख उपर तकै प्रेमा ॥
 देवि देवता बहुत मनावै । अन्त समय कोइ काम न आवै ॥
 आलस निद्रा वसै शरीरा । काहूकी नहिं व्यापै पीरा ॥
 तमोगुण लक्षण यह व्यवहारा । अन्त समय बहु करे पुकारा ॥
 यमके दूत त्रास बड़ि देही । गति निकृष्टमें बासा लेही ॥
 नर्क बासमें बासा लेई । योनि अघोर सदा भरमेई ॥
 तीनौ गुण बरतै सब अंगा । पलपल छिनछिन तीनौ रंगा ॥
 तीनौ गुण रहै देह समाई । ता कारण भरमें सब भाई ॥
 जिन साधुन गुण व्यापै नाहीं । सो तौ आवैं हमरे पाहीं ॥
 तीनउ गुणते न्यारा खेले । ज्ञानेन्द्री लै मनहि सकेले ॥
 ऐसा साधु मुक्ति गति पावै । आवा गमनकी पीर मिटावै ॥

अर्जुन उवाच ।

कहै अर्जुन तुम सुनहु सुवारा । गुण तीनों कस होइ निनारा ॥
 करनी रहनिते साधु सो रहई । कैसे इनते न्यारा कहई ॥
 इन बिन कर्म कछु नहिं होई । कैसे कै निष्कर्मी सोई ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कहैं कृष्ण पूछेउ तुम नीका । मेटौ संशय सकलौ जीका ॥
 तीनों गुण हैं नर्ककी खानी । पै सत्त्व गुणते नर उतपानी ॥
 ताते सत्त्वगुण अधिक महातम । करै भक्ति चीन्है परमातम ॥
 जो सत्त्व गुणमें बास कराई । इच्छा फल मनमें नहिं धरई ॥
 दुख सुख दोऊ एक समाना । भला बुरा कछु मनहिं न आना ॥
 मित्र शत्रु कोइ दृष्टि न आवै । सुत औ अरि दोउ एक सुभावे ॥
 पाप पुण्य की करै न आसा । निशिबासर हरिचरण निवासा ॥
 रहै उदास सदा जग माहीं । शीत उष्ण व्यापै नहिं ताहीं ॥
 आनंद रूप सख रूप है जाहीं । जगके सख दुख व्यापै नाहीं ॥
 देहीको आपन नहिं जानै । ब्रह्म रूप न्यारा पहिचानै ॥
 सुत दाराकी कौन चलावै । जगके बन्धन सब मुक्तावै ॥
 ऐसी रहनि जो साधु होई । व्यापक गतिको पावै सोई ॥
 यह तौ ज्ञान अगम में कहिया । अर्जुन राखो मन चितगहिया ॥
 चतुर्दशाध्याय कहेउ जो कृष्णा । त्रिगुण विभाग कहेउ संपूर्णा ॥

कबीर उवाच ।

कहैं कबीर सुनौ मम पासा । सत्य पुरुष चीन्हौ धर्मदासा ॥
 जाते पुरुष प्रकृति जो भयऊ । माया ब्रह्म भाव दोउ ठयऊ ॥
 महि तत्त्व कारण जग निर्माया । तीनिउ गुण परकट तेहि भाया ॥
 ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा । इनते जगत रच्यो सबसामा ॥
 इनते पुनि अवतार अनेका । जन्म धरै युग युग फिरवैगा ॥

ज्ञान सत्य यह कृष्ण सुनाया । पे फिरि कै आपा ठहराया ॥
 आदि पुरुषते परे जो दूरी । कैसे पहुँचै लोक इज्जरी ॥
 यह तौ आपा कह ठहरावै । ब्रह्मज्ञान कहि कहि समुझावै ॥
 जो नहिं थापे आपा भाई । कैसे चले तिहुँलोक बड़ाई ॥
 राजनीति सब आप मिलावै । जाते देश न उजरन पावै ॥
 पुरुष भेद जो पावइ लोई । तौ तीनिउ पुर उजर होई ॥
 तेहि कारण तीनिउ गुण फंदा । जीव जंतु सब इनकू बंधा ॥
 विष्णुरूप सत्त्वगुण जो कहिया । सत्त्वगुणसो कारज नहिं लहिया ॥
 अपने मुख जो कृष्ण सुनाया । तबहुं न मूरख मोहि पतियाया ॥
 अंकूरी जिव मोहि पतिआई । हंस होइ सत्य लोक सिधआई ॥

छंद-पुरुषते प्रकटो निरञ्जन बीज माया संगदर्द ।

सेवा बसि तिहुँलोक पायउ करण कारण सो भई ॥

करै करावै मन जो भावै थापि आया आपको ।

पुरुष सो जिव रहे न्यारे लागि इनके आपको ॥

सोरठा-सुनु धर्मदास सुजान, सतगुरु बिना न दर्शई ।

गहो शब्द निर्वान, जेहिते पुरुष परसि हो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे त्रिगुण-

विभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अर्जुन सो बोले अस बानी । कृष्ण सरूपी चतुर विज्ञानी ॥
 त्रिगुणविभागयोग कहो ज्ञाना । अब पुरुषोत्तम योग बखाना ॥
 वृक्ष भाव है यह संसारा । ऊर्ध्व मूल अध है तेहि डारा ॥
 उलटा वृक्ष नीचे हैं शाखा । यह संसार वृक्ष सम भाषा ॥
 पातहि पात रु डारहि डारा । फल लागा विनु फूल रसारा ॥

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन पूछहि सुनु भगवाना । वृक्षक वर्णन करौ बखाना ॥
 कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमारा । वृक्ष शरीर रच्यो व्यवहारा ॥
 ऊपर मूल तर डार बताऊँ । शाख पत्र सब तोहि सुनाऊँ ॥
 मूल वृक्ष है पुरुष अगोचर । शाखा ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥
 संसारी यहि गुणते आवैं । बृन्दबृन्द फिरि २ उपजावैं ॥
 साधु सन्तको आतम ज्ञानी । प्रभु पूरणकी गति पहिचानी ॥
 आवागमन तिन्हें जो नाहीं । रहै समीप पुरुषके पाहीं ॥
 कहैं अर्जुन तुम वृक्ष बखाना । सो तौ आवागमन समाना ॥
 साधुको आवागमन न होई । कैसे वृक्ष न जायें सोई ॥
 अब तुम सुनौ हौ चतुरसुजाना । निर्मल तोहि सुनावौ ज्ञाना ॥
 निष्कामी इच्छा नहिं जाहीं । असंग अस्त्र लै काटे ताहीं ॥
 असंग अस्त्र सब वृक्षहि काटा । जरा मरणको छूटौ घाटा ॥
 सोइ साधू मन चलन न पावे । बाहेर जाते भीतर ल्यावे ॥
 जैसे पुटुप बास है भाई । पवन स्रूपी लेइ समाई ॥
 ऐसे इन्द्री जिव है बासा । मन दौरे इन्द्रिन के पासा ॥
 इन्द्री साथ महा सुख मानै । अंतकाल रहु तेहि पछितानै ॥
 इन्द्रिय वश जो मन नहिं होई । पूरण ब्रह्ममें रहै समोई ॥
 मन इन्द्री सो रहै निनारा । सोई पावैं मुक्ति के द्वारा ॥
 ऐसा साधू कोई माई । कोटिन मध्ये एक रहाई ॥
 ताहि परम पद प्राप्ती होई । सुखमें ब्रह्मानंद समोई ॥
 अर्जुन कहैं परमपद कैसा । कहैं कृष्ण सुनु अर्जुन ऐसा ॥
 कोटिन सूर्य्य एक सम होई । कोटिन चन्द्र पूरण है सोई ॥
 तबी न बूजौ ब्रह्म रजियारा । परब्रह्म है अपरं पारा ॥
 अर्जुन कहै सुनो प्रभु मेरे । मैं आधीना दास हौं तेरे ॥

जब नर नींद करै सुख सोवे । सुपुपति लिये मगन सो होवे ॥
 और जब प्रलय होइ संसारा । रहै लीन सब ब्रह्म मझारा ॥
 ए गतिभक्तिते मुक्ति कहावै । पै काहते आवै जावै ॥
 सुनु अर्जुन मैं कहौ बखानी । भेद न जानै नर अज्ञानी ॥
 संशय लीन मगन होइ सोवै । ताते फिर २ संशय होवै ॥
 प्रलय घात जिव ब्रह्म समाई । मनोकामनाते फिरि आई ॥
 जैस कामना होवै लीना । तैस कामना होवै बीना ॥
 ताते आवागमन न छूटै । फिरि २ जन्म योनि धरि लूटै ॥
 जो चीन्है अभ्यन्तर आतम । चेतन रूप चिन्है परमात्म ॥
 सबके अंतर मैं ही व्यापौ । करण करावन मैं ही आपौ ॥
 जैसे तिलमें तेल रहाई । जैसे काष्ठमें अग्नि रहाई ॥
 अग्नि रूप हो अन्न पचावौ । सब जीवनके मध्य रहावौ ॥
 ऐसे व्यापक मैं अभ्यन्तर । चारिउ भोजन करौ निरन्तर ॥
 चारिउ भोजन सुनो सुजाना । जो मुखमें सब आनि समाना ॥
 भक्षणमें एक भोजन भाई । डाढते चाभि २ सो खाई ॥
 दूसर भोजन कहावै सोई । पठित भात जो भोजन होई ॥
 तीसर भोजन जो नाम कहावै । डाढ दांत ताहि नहिं पावै ॥
 सीरा सिखरन कढी कहावै । बिना दांतन रसना लै जावै ॥
 चौथा भोजन नाम जो कहिया । दांत लगाय रस चूसे जहिया ॥
 यह सब भोजन मैं ही कण्ठ । उदर सकलविधि मैं ही भण्ड ॥
 ब्रह्मरूप अविनाशी मोग । पूरण अंग आदि यहि थोरा ॥
 क्षर अक्षर दोउ ब्रह्म स्वरूपा । क्षर बिन ग्हे अक्षर अनूपा ॥
 अक्षर पाब्रह्म सो आही । दुग्व सुख कहु व्यापै नहिं ताही ॥
 ब्रह्मो निशि दिन खोजन रहई । ताकर वाग पार नहिं लहई ॥
 जैन यती संन्यासी ढूँढे । बहुत सुडावै बहुतै चूडे ॥

ताकर वार पार नहिं पावै । खोजत २ जन्म गँवावै ॥
 योगी जंगम और दरवेशा । बहु विधि रूप बनावै वेशा ॥
 अक्षर गति कोइ पार न पावै । प्रभु पूरण सब माहँ रहावै ॥
 जो सुमिरै प्रभु प्रेम लगावै । ताकह काल कबहुँ नहिं पावै ॥
 ताको आवागमन नशाई । ना कहुँ आवे ना कहुँ जाई ॥
 अर्जुन यह पुरुषोत्तम योगा । अध्याय पंचदश नाम संयोगा ॥
 कबीर उवाच ।

कहै कबीर धर्मदास सुजाना । ब्रह्मज्ञान यह कृष्ण बखाना ॥
 ब्रह्मज्ञान ऐसा है सोई । उग्र ज्ञान जानै नहिं कोई ॥
 जिन जाना तिन ही पहिचाना । जैसे गूंगे सपना जाना ॥
 गूंगा शैल जो गूंगा जानी । अभिअन्तर सो ले पहिचानी ॥
 मैं तोहि प्रगटे कहौ बखानी । गुप्त शैल कोइ गूंगे जानी ॥
 अगम अपार शब्द निर्धार । बूझै आदि अन्त सुख सारा ॥
 नहिं बोली भाषा महँ आवै । नहीं रूप कछु वरणि सुनावै ॥
 हाथ न पांव सुति नहिं जाके । कहौ कैसे कोउ पावै ताके ॥
 दृष्टि अदृष्टि न देखन आवै । सतगुरु अवर न वरण लखावै ॥

छन्द-वरण अवरण भाव बूझौ क्षर अक्षरको भेद जो ।

क्षर विनशित अक्षर सुस्थित अथ कहे यह भेद जो ॥

अक्षर माहिं निअक्षर दरशय गुरु भेद लखाइया ।

कोटि वेद पुराण बांचे सतगुरु भेद लखाइया ॥

सोरठा-अक्षर भेद है सार, बहु विधि कहौ पुकारिकै ।

बूझै बूझनिहर, आदि पुरुष सुख शब्द है ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे पुरुषो-

त्तमयोगव्याख्यानो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

सुनौ संत तुम कुंतिकुमारा । पुरुषोत्तम मैं कहेउं विचार ॥
 अब दुइ योग मैं कहेउँ बखानी । दैव आसुरी ताको मानी ॥
 दैव योग जो साधै प्राणी । दैवकी शरण लेइ पहिचानी ॥
 ताको लक्षण कहि समुझावौ । भिन्न भाव करि बरणि सुनावौ ॥
 दैव योग संपदा की वर्णक । ताको पूजि होइ जो शर्णक ॥
 प्रथम अभय निभय होइ रहै । काहूकी कछु शक न करै ॥
 सत राखै अभ्यंतर अपने । झूठ न व्यापै कबहीं सपने ॥
 ज्ञान योगते मन थिर राखै । दम शम कै काया में राखै ॥
 दान पुण्य मैं चित अभिलाषै । योग युक्ति मैं बहु विधि भाषै ॥
 नित्त नेम पढै गुरु मंत्रा । ताते काया होइ पवित्रा ॥
 अरि औ मित्र एक सम जानै । इच्छा काहूकी मन नहिं आनै ॥
 होइ अक्रोध जो त्यागे इठको । शीतल रूप जो साधे घटको ॥
 चुगली चाली दूरि बहावै । दया भाव चित माहिं समावै ॥
 लव लिप्सन होई जिव जाके । कोमल बचन सुख ताके ॥
 लोक लाज तजि साधु सुभावै । चपल बुद्धि कह दूरि बहावै ॥
 तेज तजै सत्क्रियाकी आसा । क्षमावंत होइ रहेउ उदासा ॥
 धीरज मनमें सदा समाई । शुचि संयम करि युक्ति रहाई ॥
 होइ अद्रोह द्रोह नहिं आवै । सदा देव संपद मन भावै ॥
 मन इच्छा पूजै सब कामा । देव कम ताकर है नामा ॥

आसुरी संपदाको वर्णन ।

अब आसुरी को कौं बखाना । हृदयमें नहीं ज्ञान समाना ॥
 दम करी करि लोक देखावै । अंतर्गत नहिं ब्रह्म समावै ॥
 द्रव्य देखि फूलै अधिकारी । निशिदिन लवलिप्साचित धारी ॥

करि अभिमान आपको जानै । और न दूसर चितमें आनै ॥
 क्रोध सदा अभि अन्तर राखै । बहु कठोर कोमल नहिं भाख ॥
 रहै अज्ञान ज्ञान नहिं भावै । जहां ज्ञान तहँ रोष उठावै ॥
 प्रवृत्ति निवृत्ति पुण्य औ पापा । कम धम करि थापै आपा ॥
 शौच क्रिया मनै नहिं आवै । निराचारमें मन चित लावै ॥
 जक्तके अस्त सदा सुख मानै । जग कर्ताको कबहि न मानै ॥
 यह व्यवहार आसुरी आही । कबहु न सुमिरै प्रभु जो ताही ॥
 ऐसे जीव सदा दुख पावै । नरक वास में जाइ समावै ॥
 नर्क द्वार तीन हैं भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥

तीन द्वार नर्कको वर्णन ।

प्रथम द्वार जो काम बनावा । काम द्वारलै चित्त लगावा ॥
 काम विषय निशिदिन लपटाना । नर्क वासमें जाइ समाना ॥
 दूसर द्वार क्रोध कहावै । जाके क्रोध सदा चित भावै ॥
 ताते नर्कवास में जाई । उपजत विनशत बहु दुख पाई ॥
 तीसर द्वार लोभ है भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥
 लोभ लागि जो जन्म गवाँवै । वासा नर्क सदा सो पावै ॥
 नर्क द्वार यह तीन बखाना । मूरख इनमें रहै समाना ॥
 दैव आसुरी संपद नामा । अध्याय षोडशो कहेउँ बखाना ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनु संत विवेकी । दोउ संपदा कहेउँ विशेखी ॥
 पाप पुण्य हैं दोऊ बेरी । एक लोहे एक कंचन केरी ॥
 वेरी पाय एक दुख होई । कंचन ते सुख अधिक न सोई ॥
 यह संसार फंद यम केरा । कैसे छूटै यम उर झेरा ॥
 कर्म करै कर्ता न कहावै । पाप पुण्य शिर भार लेयावै ॥
 सत संतोष हियेमें धरई । सहज सरूपी भवजल तराई ॥

साधु संत सेवा चित राखै । सद्गुरु शब्द अमीरस चाखै ॥
चाखत अमी अमर सो होई । अजर अमर सत्यलोक समोई ॥

छंद--धर्मदास तुम सुनो चित दै कर्म न लागै दासको ।

कर्म करता ना कहावै छोड़ विषय निराश को ॥

पाप पुण्य बंधा रहै जो छुटन चाहै फंद सो ॥

सुवा नलिनी पकरि अगझो आपनी मति मंद सो
सोरठा--सदा अहेरी काल, पाप पुण्य फंदा रचो ।

सद्गुरु दीन दयाल, कर्म काटि मुक्ता करो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे दैवा-

सुरमंपदाव्याख्यानो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन कहेउ सुनौ यदुगई । कछु मोरे जिय संशय आई ॥
सो अब प्रकट कहौ भगवाना । आगे सूक्ष्म सुना मैं काना ॥
शास्त्र धर्म छाडि जिन दीन्हा । तिनकी गति तुम कैसे कीन्हा ॥
रूप मरूप कौन है ताही । सत रज तमगुण ये को आही ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमाग । भली बात कर कीन्ह विचार ॥
जग रचना शास्त्र मत आही । तेहि मार्ग सब लागे जाही ॥
शास्त्र न वेद पुगण न छोडे । सो तौ नर्कवास में बोडे ॥
जब लगि ब्रह्मज्ञान नहि आवे । तब लगि शास्त्र धर्म मन लावे ॥
जब आवे याको ब्रह्मज्ञाना । शास्तर वेद कितेव हेगना ॥
ता कह कर्म न लागै भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥
जब आत्म परमात्म जानै । कर्म धर्मते भे निखानै ॥

मोक्ष सरूपी आपे होई । ना फिरि जन्मे मरे न सोई ॥
 एसी भांति जो साधु रहाई । ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई ॥
 अब तीनों गुन वर्नि सुनावौ । सकल कामना तोर मिटावौ ॥

त्रिगुणको वर्णन ।

सत रज तमगुण तीनि बखाना । तीनते तीनि २ औ जाना ॥
 पूजा तीनि अब कहौ बखानी । पूजहिं सुर नर मुनि औ ज्ञानी ॥
 सात्त्विकी देवा पूजै भाई । राजस पूजै यक्ष बनाई ॥
 तामस भूत प्रेत पूजावहि । नर्कवास लै सो मुक्तावहि ॥

त्रिगुण अहारको वर्णन ।

अहार तीन अब मुनले भाई । सबमें सत रज तम जो आई ॥
 खीर खांड घृत करै अहारा । यह लक्षण सतगुण व्यवहारा ॥
 साधु सरूपी सदा सु चाला । सन्तनको बहु विधि प्रतिपाला ॥
 करुवा खट्टा लोनु तीक्षण । ये अहार राजस लक्षण ॥
 कुख सुख ताहि जो व्यापे भाई । नाना व्यञ्जन करै बनाई ॥
 तमगुणके आहार बखाना । भई रसोई पहर सेराना ॥
 भोजन करि २ लोक सिधाव । स्वाद अनेक रहै ना पावै ॥
 होइ उच्छिष्ट अन्न अब भाई । तामसि तामस करि २ खाई ॥

त्रिगुण यज्ञ वर्णन ।

व्रज्य यज्ञ प्रथम है भाई । बिन फल इच्छा यज्ञ कराई ॥
 प्रभुके सुमिरन रहै समाई । ताकी बुद्धि सात्त्विकी भाई ॥
 राजस यज्ञ करै फल चाहै । दंभ करै यश कृत्रिम समाहै ॥
 यज्ञ विधि निह तामसी होई । अन चूने बिनु करै रसोई ॥
 जैसे तैसे यज्ञ करै पूरा । दक्षिना देत बहुत के घूरा ॥
 खरच करै औ कल्पे भाई । ताते नर्क बास चलि जाई ॥

त्रिगुण तपस्या वर्णन ।

तनसो देवता पूजा लावै । गुरु और ज्ञानी पूज पुजावै ॥
 शुचि संयम जो कोमल रहई । ताकर काल पला नहिं गहई ॥
 ब्रह्मचर्य पुत्रि आनि जेवावै । रहै अनिच्छा सत्य न खोवै ॥
 यह तन पूजा करै सुजाना । गुरु गोविन्द को धारै ध्याना ॥
 सात्त्विक मन तप कहौ बुझाई । इन्द्री सबै हाथ जेहि आई ॥
 प्रथमै मन प्रसन्न जो राखै । मोन रहै अमृत रस चाखै ॥
 आतम निग्रह करै सुजाना । अन्तर्भाव सुधा निर्वाणा ॥
 तपस्या मनकी कही सुनाया । सुधा सरूपी सतगुण भाया ॥

सात्त्विकी वचन तपस्या वर्णन ।

वचन तपस्या करों बखाना । यह तप मुखते भया प्रवीना ॥
 अभय वाक्य ताकूं भइ नाहीं । सत्ति सरोत्तर जस मुख माहीं ॥
 प्रिय हित साधु वचनसो कहही । पाठ करी करि जन्म सुधरही ॥
 एते वचन तपस्या होई । मुखते करे कशवै सोई ॥
 तीनि तपस्या सतगुण भावा । सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥
 रजस तपस्या त्रै परकारा । ताकूं अब मैं करौ प्रचार ॥
 तीनि तपस्या राजस भाई । तनसों तपकरि लोक देखाई ॥
 मनसों कपट कबड्डु नहिं छूटै । वचन सदा सुख बोले झूटै ॥
 तीनि तपस्या राजस होई । ऐसी भांति करे जो लोई ॥
 तामस तप है तीन प्रकारा । शुभ अशुभ कछु नाहिं विचारा ॥
 हठ करि तपसो तनको गारै । मनमें क्रोध सदा जो धारै ॥
 वचन कठोर बहुत सो बोलै । तामस ताप अहं लिये डोलै ॥
 तीन तपस्या त्रिगुण सुभावा । सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥

त्रिगुण दानका वर्णन ।

तीनि प्रकार दान अब वर्ने । उत्तम सेवा ब्रह्महि चीन्हौ ॥

अन आश्रित को देइ जो दाना । तीरथ उत्तम ठौर ठेकाना ॥
दान देइ फल चाहै नाहीं । सात्त्विक दान सो कहिये ताही ॥

राजस दानका वर्णन ।

जत अश्रेष्ठो दान जो देई । लाहा कारण संशय लिई ॥
यह तो राजसको व्यवसाय । दान देइ चित कश्ये भाग ॥

तामस दानका वर्णन ।

तामस अशुचिको देइ जो दाना । नटुवा वेश्या हित करि जाना ॥
ब्राह्मण देत क्रोध मन कई । इच्छा बहुतै फलको धई ॥
यह लक्षण तामस कर होई । तीनि प्रकार दान है सोई ॥

तीनि नाम त्रिगुणको वर्णन ।

तीनि नाम वर्णों में त्रिगुण । जाते सृष्टि होत है सगुना ॥
वह अंतुतु है मति साई । तीनिउ नाम एक सम होई ॥
निज मंत्रहि मैं भाषि सुनाया । ताको मर्म न काहू पाया ॥
पाक रसोइ छूति जो होई । वो अंतुतु सति है सोई ॥
पातक छूति रहै नहि कोई । यह तो मंत्र पवित्र कराई ॥
पावै प्रसाद जो सकल जहाना । सुमिरै पावै पद निर्वाण ॥
सब कारज सुमिरै त्रै नामा । पूरण होइ सकल विधि कामा ॥
योग सिद्धि सत्रह अध्याई । सो तो पूरण वर्णि सुनाई ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनु धर्मनिराया । तीनिउ गुण बरतै संसारा ॥
साधू कहैं कोइ कर्म न लागै । तन मनते इच्छा कह त्यागै ॥
कर्म करै कर्ता न कहावै । मन सो कुमारग जान न पावै ॥
भारग अगम साधुकर होई । कृष्ण अपने मुख भाषा सोई ॥
वेद पुराण पार नहि पावै । जहँवा साधू ध्यान लगावै ॥
वेद कितेब दोउ है फन्दा । यहि ते लागि रहै जग धन्धा ॥

ज्ञानहि कहि २ कर्म दृढ़वै । यज्ञ दान फिरि जन्म धरावै ॥
हम तौ कहो अगोचर ज्ञाना । जाते होइ हंस निर्वाना ॥

छन्द-अगम अगोचर भेद सद्गुरु साधु रहै समाइ कै ।

हंस होइ सत्यलोक आवै दरस सद्गुरु पाइ कै ॥

पूरा गुरु जो पावई तौ मिटै यम फंद को ।

हंसको मुक्ताइ यमसो मिलै अच्युतानंदको ॥

सो गथा-ऐसा शब्द अपार, वार पार बिच भेद को ।

सत्य शब्द निर्धार, सद्गुरु से इ बताइया ॥

ईति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे योग-

सिद्धव्याख्यानो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

अर्जुन कहैं सुनो यदुनाथा । जो पूछौं सो करौ सनाथा ॥
संन्यास कर्म काहे सो कहिये । त्याग रूप सब वर्णन चहिये ॥

संन्यासको वर्णन ।

सुनु महाबाहु मैं कहौं बखाना । कम नाश संन्यास समाना ॥
कर्म धर्मको मारग छाड़ै । ब्रह्म ध्यान अभ्यन्तर मांड़ै ॥
सब परंपंचते न्यारा होई । कर्म संन्यास कहावै सोई ॥

त्यागरूप वर्णन ।

त्याग रूप है अगम अलेखा । कम करै नहिं आपु विशेषा ॥
निशि दिन कर्म धर्म जो होई । रहै अलिप्त लिप्त नहिं होई ॥
अपनेको कर्ता नहिं जानै । फल औ अफल मनहि नहिं आनै ॥
ताकहैं त्याग कहीये भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥

संन्यास त्रिप्रकार वर्णन ।

संन्यास त्याग तीनि गति होई । अनिष्ट इष्ट मिश्र गति सोई ॥
अनिष्ट नर्ककी योनी भुक्तै । देव योनिको इष्ट संयुक्तै ॥
मिश्र मानुषकी देह जो पावै । तीनों गति गीता बतलावै ॥

त्रिप्रकार क्रिया वर्णन ।

कहाँ किया तीनिहु समुझाई । ज्ञान कम कर्ता जो आई ॥
ज्ञान किया त्रिप्रकार ।

प्रथमैं ज्ञान सुनौ चितलाई । ताकर लक्षण तीनि बताई ॥
जबही ज्ञान हृदयमें आवै । सर्व त्यागि प्रभुको लवलावै ॥
सर्व व्यापि जो ब्रह्महि जानै । सात्त्विक लक्षण ज्ञान बखानै ॥
राजस लक्षण जानै प्रभु न्यारा । न्यारा २ ब्रह्म विचारा ॥
तामस लक्षण एक ठौरहि जान । मूर्ति प्रतिमा पूजा ठानै ॥
ताहि एहै ठाकुर है येही । परम पुरुषते नाहि सनेही ॥
जेहि देवा कौ जो कोइ ध्यावै । तेहि देवहि ठाकुर ठहरावै ॥
यह लक्षण तम गुण व्यवहारा । तामें वास है नरक दुबारा ॥

कर्म किया त्रिप्रकार वर्णन ।

दोसर कर्म लक्षण है तीनी । जानै कोउ साधू परबीनी ॥
कर्म करै फल चहै न ताको । पुत्र कलत्र असंग सदाको ॥
राग द्वेष जाके नहि आवै । एतौ सत्त्वगुण कर्म सुभावै ॥
राजस कर्म सुनावौ मीता । करि २ कर्म कामना प्रीता ॥
कर्म अधिकार आपु ना होई । फल वांछे मन राजस सोई ॥
तामस कर्म सुनौ तुम भाई । तप स्नान औ जप लर जाई ॥
इठ करि कर्म करै बहु भाई । दुख सुख अह निशि लहै सदाई ॥
ता प्रकार क्रोधहु बहु होई । तामस नर्क वास है सोई ॥

कर्ता लक्षण त्रै प्रकार ।

तीसर कर्ता रूप बखानौ । कारण करण करै सोइ जानौ ॥

सात्त्विक कर्ता जो कछु करई । आपु मेटि प्रभुको चित धरई ॥
 आपुको कर्ता नहिं जानै । कर्ता पूरण पुरुष बखानै ॥
 ऐसी रहनि रहै जो दासा । नर्क स्वर्गकी ताहि न आसा ॥
 सो सत्त्व गुण लक्षण है भाई । जाते कहिये साधु सुभाई ॥
 राजस कर्ता आपुको जानै । दाराहित सुत आपको मानै ॥
 बहुतै हर्ष शोक तेहि भावै । थोर करै बहुतै फल धावै ॥
 तामस कर्ता लक्षण भाई । आलस निद्रा बहुत रहई ॥
 आपु अयोग चाहै पुरुषारथ । ह्वै अधीन नहिं चाहै स्वारथ ॥
 कारज होइ गये अब जाको । दिन औ राति बतावै ताको ॥
 भोर होइ सो दिवस बतावै । तामसकर यह सदा सुभावै ॥

त्रिप्रकार बुद्धिको वर्णन ।

तीनि प्रकार बुद्धि है भाई । प्रथमैं सुमिरन में ठहराई ॥
 निवृत्ति प्रवृत्ति जो मारग जानै । करै विचार धर्म पहिचानै ॥
 काज अकाज न बंध न मोक्षण । सो साध्वी है सात्त्विक लक्षण ॥
 दुसरी बुद्धि तो धर्म अधर्मा । काज अकाज जाने सब पर्मा ॥
 राजस बुद्धि लक्षण यह भाई । मनमें सदा विचार कराई ॥
 तामसबुद्धि अब सुनहु सुजाना । क्रोध लिये मन विषय सुजाना ॥
 धर्महि सो अधरम करि जानै । करै अधर्म धर्म पहिचानै ॥
 ता अधरम कह धर्म जो कहई । सदा तामसी बहु दुख सहई ॥

त्रिप्रकार धीरज ।

सात्त्विक धीरज वरणि सुनाऊं । संशय तोर जो सकल मिटाऊं ॥
 पांच तत्त्व मन संयम साधै । सकल कामना यह अवराधै ॥
 इंद्री सकल एक सम करई । सात्त्विक ऐसो धीरज धरई ॥
 राजस धीरज है परसंगा । पारस लागे धर्म उमंगा ॥
 कर्म करै संगति ते सोई । औ फल चाहै राजस होई ॥

धीरज तामस सपना देखै । भय अभय सकलों में पेखै ॥
शोक विषाद वसै मन माहीं । तामस धीरज लक्षण आहीं ॥

त्रिप्रकार सुख वर्णन ।

अब सुख लक्षण कहौ जो सोई । तीनि भांति सुख व्यापक होई ॥
प्रथमहि सात्त्विक सुख सुनु भाई । सुख कहै विषके जानै सोई ॥
सुखसो कबही हेत न जानै । विष समान ताकह पहिचानै ॥
अंत समय विषमो सुख होई । सात्त्विक लक्षण बरनौ सोई ॥
दूसर इंद्री सुख संयोगा । परनारी सों करै जो भोगा ॥
यही प्रकार महा सुख करई । सो सुखी अंत जो विषसो होई ॥
राजस सुख लक्षण यह भाई । दुख सुख बहुतक व्यापै जाई ॥
तीसर तामस सुखहि बखानो । विवेक विचार हृदय नहि आनो ॥
आलस निद्रा बहु सुख मानै । सपने कबहीं गम न जानै ॥
तामस सुख यह कहिये भाई । जाते नरक सदा भर्माई ॥

वर्णका वर्णन ।

चारि वर्ण अब वर्णों भाई । तिनके य गुण प्रकट सुनाई ॥
ब्राह्मण सत्त्वगुण रूप विगजै । कर्म स्वभाव ताहि तन छाजै ॥
शम दम तप शूच्या सो करई । ज्ञान विज्ञान सत्य मन धरई ॥
स्थिर मनमें कठोर तन होई । ब्राह्मण कर्म स्वभाव जो सोई ॥
क्षत्रिय सत्त्वरज दुइ गुण धारी । शूरवीर दाता अधिकारी ॥
तीक्ष्ण धीरज बुद्धि है जागी । युद्ध करत कबहूँ नहि भागी ॥
वैश्य राजसी कहौ बुझाई । कृषी गऊ रक्षक है भाई ॥
वणिज व्योहार बहुत संसारा । यह तौ लक्षण वणिज व्यवहारा ॥
शूद्र वर्ण सेवकाई करई । सेवक होइ भवसागर तरई ॥
सेवा फल है अगम अपारा । आवागमनते होई निनारा ॥
जो अभिमान तौ जन्म गवाँवै । सेवा विना नहीं बनि आवै ॥

चारि वर्णको कर्म सुनाई । अर्जुन तोहि कहौ समुझाई ॥
 जो कोइ अपने धर्महि चाहै । प्रीति भाव सदा चित लाहै ॥
 भला जानि पर धम न लेई । आपन धर्म छाँड़ि नहिं देई ॥
 निज कुल छाँड़ि ऊँच मन धरई । सो पुनि भवसागरमें परई ॥
 कुलके कर्म सदा सुख पावै । नवनिधि लक्ष्मी ता घर आवै ॥
 ताते तोहि कहौ समुझाई । युद्ध करो तुम अर्जुन भाई ॥
 कहा हमार चित्त नहिं धरिहौ । हमरे कहे युद्ध नहिं करिहौ ॥
 तौ अब कर्म रेख उठि धावै । तोसो युद्ध अनेक करावै ॥
 तब तुम करौ युद्ध संग्रामा । करो मारि क्षत्रियके कामा ॥
 तब तोहि रोख अधिक होइ भाई । हमरी प्रीति भंग होइ जाई ॥
 जो नीका सो करो सुजाना । ज्ञान अज्ञान सब करेउँ बखाना ॥
 यह गीता मैं कहि जो सुनावा । पै कछु भेद और समुझावा ॥
 गीता मता गुप्त है भाई । चारिहु जनको कहि समुझाई ॥

चारि अधर्मको वर्णन ।

भक्ती हीना तपसो हीना । सेवा बिना नहीं आधीना ॥
 निद्रा रूप सदासों रहई । तासों गीता कबहु न कहई ॥
 तासों संगति कबहु न कीजै । इच्छा प्रभुकी गहिके लीजै ॥
 गुप्त ज्ञान है कथा पियारी । तहां कहो जहँ होइ हितकारी ॥
 भक्त साधु जहँ हरि यश गावैं । गीता कथा तहां अर्थावैं ॥
 सुनत सुनावत बहु सुख होई । कोटिक अश्वमेध फल होई ॥
 अर्जुन गीता तुम्हें सुनावौ । ज्ञान कथा कहि बहु समुझावौ ॥
 मोह तुम्हार छूट की नाहीं । सो तुम बोलौ हमरे पाहीं ॥
 जो कछु तुम्हरे मनमें होई । करो जाइ तुम अर्जुन सोई ॥
 अर्जुन सुनत दंडवत कीन्हा । बिनय भांति ते बहु सुख दीन्हा ॥
 मोह मोरि सब दूरि परानै । बचन तुम्हार ज्ञान करि मानै ॥
 अस्र लीन तब हाथ उटायै । महा कोप होइ धनुष चटायै ॥

अध्याय अठारह कहा बखानी । योग संन्यास नाम तेहि जानी ॥
अर्जुन गीता भयो समापति । जो कछु कही आपु कमलापति ॥

कबीर उवाच ।

कहे कबीर सुन धर्मनि हीता । तुम्हरे लिये बखानेउँ गीता ॥
तुम तो भक्त जक्तते न्यारा । आवागमनके बीज तुम्हारा ॥
अब तुम परम भक्ति चितलावौ । निशिदिन सतगुरु शब्द समावौ ॥
धर्मदास बिनती उठि लाई । सुनि गीता संशय उपजाई ॥
गीता कही कृष्ण केहि कारण । अर्जुन उठे कुटुम्ब संचारण ॥
ज्ञान सुने मति निर्मल होई । मित्र औ दुष्ट एक सम होई ॥
ज्ञान सुने कछु क्रोध न आवै । परम पुरुषते मन चितलावै ॥
गीता कृष्ण जो कहेउ बखाना । ज्ञान सुनाइ क्रोध मन आना ॥
क्रोधबिना सो युद्ध न होई । नर्क द्वार कृष्ण कहेउ सोई ॥
क्रोध किये अज्ञान कहावै । यह सब भेद मोहि समुझावै ॥
कृष्णमता कहि प्रकट देखाऊ । ज्ञान सुने अज्ञान न आऊ ॥

कबीर उवाच ।

सुनि धर्मनि यह भेद है बंका । जानत नहीं राउ औ रंका ॥
कृष्ण ठगौरी जक्त लगाई । ताते भेद न बूझौ भाई ॥
यह प्रपंच कृष्णकर आही । भिन्हु लोक सदा भर्माई ॥
चाहे छल बल युद्ध करावै । अर्जुन कैसे धनुष उठावै ॥
महामोह तेहि रहा समाई । और भांति नहि मान भाई ॥
छलहि मता किन्हों आपे सोई । ज्ञान सुनाइ मोह कह खोई ॥
यह तो ज्ञान कहौ परमारथ । जेहिते युद्ध होइ पुनि स्वार्थ ॥
जसी इच्छा करै जो ज्ञाना । फल पाव सेवा अनुमाना ॥
नहि अर्जुन मनपुरुष मिलापा । कैसे कर्म होइ ॥
पुरुष मिलाय न कृष्ण सुनावै । कैसे अगम अगोचर पावै ॥

पावै अगम कृष्ण को मानै । तीनि लोकको भूपति जानै ॥
ताते ज्ञान कहि कर्म दृढावै । फिरि २ भवसागर भटकावै ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास कहैं सुनो गोसांई । मारग साधु जो अगम सुनाई ॥
कर्म धर्म कह पाछे मेलै । ज्ञान रूप अभ्यन्तर खेले ॥
परम अनंद पुरुषको दर्शै । सेवक स्वामी चरण न पशै ॥
गीता कहै औ कर्म दृढावै । केहि कारण इनको भटकावै ॥
कौन ज्ञान जो भर्म बतावै । फिरि २ भवसागर भटकावै ॥

कबीर उवाच ।

धर्मदास मैं कहौ बुझाई । मूरख लोग नहीं पतिआई ॥
तीनिउ लोक पुरुषपदि दीन्हा । राजै काज करावन कीन्हा ॥
जो चाहै सो रचे बनावै । तीनि लोकते जान न पावै ॥
ज्ञानोपदेश देइ जो भाई । तौ यह सृष्टि वैराग उठाई ॥
तब यह रचना सबही थाके । इनको कौन गोसांइया थापे ॥
तेहि कारण इन कम दृढाई । अरुझी सृष्टि सकल भर्माई ॥
सतगुरु शब्द सुना कहैं दरसै । जाते प्रभु पूरण कहैं परसै ॥
गीता कहि जो कृष्ण सुनाई । तबहु न अंधा मोहि पतिआई ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास विनती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तव बलिहारी ॥
जब कर अर्जुन धनुष संभाग । कहा कीन्ह सो कहौ विचारा ॥

कबीर उवाच ।

सुनो संत धर्मनि निर्वाणा । अंत युद्ध सब करों बखाना ॥
बहुतै भांति युद्ध तिन कीन्हा । युद्ध जीति राजहि मन दीन्हा ॥
राज युधिष्ठिर मनहि विचारा । बहुतै भांति बंधु हम माग ॥
कस प्रायश्चित्त मोक्षण होई । कहौ व्यास हमसों तुम सोई ॥

व्यास कृष्ण मिलि मन अर्थाई । कुल हत्या कैसे मुक्ताई ॥
 करो विचार अश्वमेध जो कर्गई । यज्ञ करत हत्या परिहरई ॥
 सब मिलि ऐसा मता विचारा । बहुत भाति यज्ञ करौ संभारा ॥
 ताते पाप मोक्ष दोइ भाई । यज्ञ करनको मता दृढाई ॥
 करौ यज्ञ मन भयो विश्रामा । राज मनोरथ पूरण कामा ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास विनवै कर जोरी । संशय उपजी मेटेउ मोगी ॥
 पांडव कृष्णहि बहुत पियारे । किया यज्ञ तब कहां सिधारे ॥
 कैसे गति मति उन पुनि पाई । कृष्ण सरीखो रहै समाई ॥

कवीर उवाच ।

धर्मदास तुम चतूर सुजाना । पृछेउ सो अब करौ बखाना ॥
 कृष्ण देह जब छांडन लागे । तिनसों कद्यो ताहिते आगे ॥
 अवधि हमारि आय नियराई । तुम हूँ गरो हेवारे जाई ॥
 अर्जुन कहहु सुनौ गोसाई । कारण कवन हेवारे जाई ॥
 कृष्ण कही तब ऐसी बाता । तुम तौ बंधु कीन्ह है घाता ॥
 पातक बहुत जो तुमसे भयऊ । गरै हेवारे ताते कहेऊ ॥
 कहैं अर्जुन सुनु पुरुष पुराना । मारण बंधु न हम चित आना ॥
 गीता ज्ञान मोहि समझाया । युद्ध करनको अस्र बँधाया ॥
 तुमको पातक नाहीं लागे । कर्ता करै आपु अनुरागे ॥
 तुम्हरे कहे युद्ध हम कीन्हा । पातक हम शिर काहे दीन्हा ॥
 पुनि तुम कह अश्वमेधहि कर्हू । सब पातक पाछिल परिहरहू ॥
 तापर हम अश्वमेध जो कीन्हा । तबहू पातक हम शिर दीन्हा ॥
 कहैं कृष्ण अर्जुन सुनु भाई । कर्म रेख मेटो नहि जाइ ॥
 कर्म रेखने सब जग आवै । बार बार दुख सुख भुक्तावै ॥
 चारिउ युग फिरि याइ आई । हम तुम ऐसे संग रहाई ॥

ताते कछु संदेह न कीज । वेगि हेवारे पयाना दीजै ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास पूछै सुनु भाई । आगे कैसे भई गुसाँई ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर यह सर्ग बखाना । तुमसों वर्णन कहौ निदाना ॥

पांडव जाइ हेवारे गलिया । देह समेत युधिष्ठिर चलिया ॥

करेउ पुण्य जप तप औदाना । ताते पहुँचे स्वर्ग स्थाना ॥

और पांडवा नर्क समाने । इत्याके फल नर्क रहाने ॥

तहां जाइ कोइ बंधु न देखा । पूछेउ सबै देव मुनि शेषा ॥

कहां हमारे चारिउ भाई । केहि कारण मोहि इहाँले आई ॥

इहां कहां वे बसवे पाई । जाके खोजो चारिउ भाई ॥

तुम राजा हो धर्म अवतार । ताते पहुँचे स्वर्ग दुआरा ॥

बंधु तुम्हार पातक बड़ कीन्हा । ताते वास नर्कमें दीन्हा ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

की उनको इहवां लै आवहु । की हमको उहवां लै जावहु ॥

जब यह विष्णु सुनो मन जानी । इनकह पुण्य बहुत पहिचानी ॥

उपजो मोह बंधु हित भाई । जाइ लै आवहु बंधु देखाई ॥

नर्क कुण्ड तेहि जाइ देखाई । वृद्ध देखे चारिउ भाई ॥

और सकल परिवार घनेरा । काहू सुधि नहिं काहू केरा ॥

चारिउ भाई रोवन लागे । कर्म हीन हम बड़े अभाग ॥

राइ युधिष्ठिर मोह जनाऊ । मोह नर्क कुंड ल नाऊ ॥

दूत विष्णु सों बहुरी जनार्ण । आपु युधिष्ठिर नर्कमें जाई ॥

जो कछु आज्ञा होइ गोसाँई । आज्ञा मानि कगे सोइ जाई ॥

कहै विष्णु यह धर्म सरूपा । कगे युधिष्ठिर पुण्य अनूपा ॥

जो कबहीं वे नर्क मो जेहैं । अघ जीवन सब लै उतरैहैं ॥

क्षण अँगुरी ले नकमो डागे । एते चारिउ बन्धु उबारो ॥
 फिरि ले आवहु कुंती जहवां । स्वर्ग स्थान वैकुण्ठ है जहवां ॥
 ऐसी भांति करो तहँ जाई । क्षणहि अँगुरी नक गुड़ाई ॥
 ता कहँ लागि बंधु सब आये । राइ अनंद बहुत सुख पाये ॥
 गये युधिष्ठिर धर्म स्थाना । धर्म पुत्र रहे धर्म ठेकाना ॥
 भीम जाइके पवन समाई । पवन पुत्र जेहि कहिये भाई ॥
 अर्जुन इन्द्र पुत्र जो रहिया । इंद्रलोकमें चामा करिया ॥
 सहदेव नकुल जो दूनो भाई । अश्विनी कुमार पुत्र हिनलाई ॥
 ऐसे स्वर्ग लोक किय बासा । पुण्य घटै भवमागर आसा ॥

धर्मदाम उवाच ।

धर्मदा ॥ कहैं सुनो गोमोई । पांडव मित्र विष्णुके आहीं ॥
 गीता भागवत वेद पुकारा । दशन प्रभु जिन नेक निहाग ॥
 ताका आवागमन न होई । सुरनर मुनि सब भाषै सोई ॥
 साधु संत मिले सब गुणगावैं । जो कोइ हक्कि दर्शन पावैं ॥
 ताकी मोक्ष मुक्ति होइ भाई । जग मरणको बीज नमाई ॥
 साक्षादर्शन कृष्णको लहिया । और विगट देखायो तहिया ॥
 मोक्ष मुक्ति उन काहे न पाई । साहेब कहौ मोहि समुझाई ॥

कबीर उवाच ।

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । पुरुष एक आदि रहिवासा ॥
 तिन्ह पुनि श्वासा कीन्ह प्रकाशा । धर्म धीर एक अंश नेवासा ॥
 तिनते उपजेउ अँअँकाग । माया प्रकट भई विस्तारा ॥
 ब्रह्मा विष्णु उपजे तब भाई । जिन यह रची सृष्टि दुनिआई ॥
 इनकह तीनलोक जो दीन्हा । राज रूप रचना तिन कीन्हा ॥
 सकल बीज जो पुरुषते आया । जाते सकल सृष्टि निर्माया ॥
 कामिनि जबै धर्म निज कीन्हा । कर्मरेख जो भया अधीना ॥
 दश अवतार कर्म सो भयऊ । कारण कर्म इन्है निर्मयऊ ॥

कर्मरेख रघुपति दुख पायउ । सीता शोक बहुत पछितायउ ॥
 नरसिंह शूकर रूप धरावा । मच्छ कच्छ सर्व कर्म बनावा ॥
 वामन होइ बलि छलिया जाई । परशुराम होइ युद्ध कराई ॥
 कर्मरेख यदुपति दुख पावा । बन २ धनु चरावन धावा ॥
 गोपी पोइश सहस्र अनंदा । तिन सँग नाचे बाल मुकुंदा ॥
 कर्मरेख भे बोध शरीरा । आवा गमन मिटो नहि पीरा ॥
 निष्कलंक है दश अवतारा । कर्मरेख भय प्रलय संघारा ॥
 इनते अधिक और को आही । कर्मरेखते मुक्तत जाही ॥
 अंकूरी कोइ जीव रहे भाई । सो अंकूर पुरुष ते आई ॥
 तिन कह पुरुष जो चितवन कीन्हा । कैसे लोक होइ लवलीना ॥
 सतगुरु यहि कारण उपजावा । हंसन कारण मोहिं पठावा ॥
 मूर्ख शब्द नहि मानै भाई । अंकूरी परवाना पाई ॥
 कर्मरेख पांडव दुख पावा । कर्मरेख छूटे न छुटावा ॥
 इन कहैं सब जग करता जाने । ताते आवा गमन नसाने ॥
 सतगुरु मिले सत्य शब्द लखावै । कर्मरेख बंधन मुक्तावै ॥

छंद—धर्मदास तुम बुझि देखौ छल मता भगवानहो ।

मूर्ख जन उपदेश कारण गीता कियो बखान हो ॥

पांच पांडव परम मंत्री तिनको गति कैसी दर्ई ।

नर्क स्वर्गमें वास करि २ जन्म फिरि २ तिन लई ॥

सोरठा—बूझो संत सुजान, गीता कथा जो सब सुनी ।

चेतनि हंस अमानि, और सकल भरमें दुनी ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे

त्यागसंन्यासव्याख्यानं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ उपसंहार ।

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास बिनवै कर जोरी । तुम दयालु बंदी मोरि छोरी ॥
 गीता जो तुम कही बखानी । पांडवकी गति सब मैं जानी ॥
 ऐसे सब जीव भगमाई । कैसेहु भांति मुक्ति नहिं थाई ॥
 सोइ ज्ञान मोहिकहि समुझावौ । जरा मरण को बीज नसावौ ॥
 कवीर उवाच ।

सुनु धर्मदास हंस पतिराया । हंसन कारण पुरुष की दाया ॥
 अंकूरी जिव आपु बोलाया । ताते हम कद लेन पठाया ॥
 सत्य शब्द अब करौ प्रकाशा । पावै हंसा लोक निवासा ॥
 उग्र ज्ञान है मता निनारा । सूक्ष्म वेद जो पुरुष संचारा ॥
 पुरुष दया आनेउ संसारा । जेहिते पावै मुक्ति दुवारा ॥
 अध्याय उनइस कहौ ये भाई । सुर नर मुनि जानै नहिं ताई ॥
 मुक्त होइ सत्यलोकहि जावै । आदि पुरुषके दर्शन पावै ॥
 प्रथमै रहनी हंस बखानो । निशि दिन रहै नाम लपटानो ॥
 तीनी गुण हैं विपके मूला । ताते दुख सुख भये स्थूला ॥
 दुइ गुण कबहीं चित नहिं धारै । रज तमको पपंच विसारै ॥
 वासा करै सत्यके माहीं । आसा ताकी राखै नाहीं ॥
 प्रकृति पचीस पंच तत्त्व रहई । तीनिउ गुण कारण यह वहई ॥
 जो तीनिउ गुण वश करै आपै । पंच पचीस कोइ नहिं व्यापै ॥
 तीनिउ गुणते न्यारा खेलै । मनुआ सत्य सुमिरनमं प्रेळै ॥
 श्वास सुति एक डोरी लावै । अजर अमर होइ हंस मिलावै ॥
 मन पवनालै सुख मनि राखै । सोइ हंस अमीरस चाखै ॥
 तहवां अनहद होइ झनकाग । विन दीपक मंदिर उजियारा ॥
 अनहद सुनै अकह गुप्त गावै । मन चित गहि २ सुरति लगावै ॥
 तहवां रैनि दिवस नहिं होई । पुरुष २ सो सुरति समोई ॥

ऐसी रहनी हंस रहावै । बहुरि न योनी संकट आवै ॥
धर्मदास उवाच ।

धर्मदास कहै सुनो गोसाई । पुरुष नाम कहउ समुझाई ॥
सहस्र नाम जो देव बखाना । नेति २ कह बहुरि निदाना ॥
कोन नाम को सुमिरन करई । कैसे सदा पुरुष चित धरई ॥
कैसे आवागमन मिटाई । क्षर निर अक्षर कह समुझाई ॥
कबीर उवाच ।

सुनु धर्मनि तुम हंस पियारे । तुम्हरो काज सकल हम सारे ॥
सुमिरन आदि मैं तुम्है सुनावौ । सकल कामना तोर मिटावौ ॥
नाम एक जो पुरुषको आही । अगम अपार पार नहिं जाही ॥
वेद पुगण पार नहिं पावै । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर धावै ॥
आदि कहीं तौ को पतिआई । अंत कहीं तौ परलै जाई ॥
आदि अंतमें बासा होई । निर अक्षर पावै जन सोई ॥
अक्षर कह सब जक्त बखानै । निरअक्षरको मर्म न जानै ॥
कहो न जाइ लिखो ना जाई । बिन सद्गुरु कोउ नाही पाई ॥
सद्गुरु मिलै तो अगम लखावै । हंस अमी पीबत घर आवै ॥
अंकुरी जीव लहे निर्बाना । पावत हंस लोक पहिचाना ॥
सुतिवत पावै निज वीर । संग रहौ मैं दास कबीर ॥
जो कोइ हंस प्रवाना लेई । अग्र नाम सतगुरु कहि देई ॥
बिन सद्गुरु कोइ नाम न पावै । पूग गुरु अकह समुझावै ॥
अकह नाम वह कहा न जाई । अकह कहिकहि गुरु समुझाई ॥
समुझत लोक परै पुनि चीन्हा । जाते लोक होइ लवलीना ॥
हरदम सुमिरै चित्त लगाई । लोक दीपमें जाइ समाई ॥
अजर अमर होइ लोक सिधावै । चौरासी बंधन मुक्तावै ॥
आवागमन ताहि नहिं भाई । जग मरणका बीज नसाई ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास भये बहुत अधीना । सद्गुरु पूरा तुम कहैं चीन्हा ॥
तुम्हरी दया नाम इम पावा । बन्दी छोड हंस मुक्तावा ॥
करहु दया अब अंतर्ग्यामी । लोक दीपको वरण बखानी ॥
जहवां सत्य पुरुष रह जोई । हंसा तहवाँ दर्शन होई ॥
पुरुष शोभा वरणि सुनावो । दया करो अब भेद लखावो ॥

कबीर उवाच ।

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा । ऐसा भेद नहीं परकाशा ॥
यह तौ भेद अगम है भाई । वेद कितेव कहैं नहिं पाई ॥
शेष महेश न कोई जाने । ब्रह्मा खोजत ताहि भुलाने ॥
विष्णु सदा मन सुमिरन करई । पै काहू नहिं परकट करई ॥
ज्ञान कहैं तब पुरुष बतावै । सुनि पुनि आपा लै टहगवै ॥
यह जग मूरख महा अचेता । परम पुरुषते नाहिन हेता ॥
हेत बिहूना जो नर आही । यह तौ भेद कही नहिं ताही ॥
सुरतिवंत हंसा जो होई । तासे भेद न राखेहु गोई ॥
उग्रज्ञान यह भेद अपारा । तुमसे कहा आज हम साग ॥
सूक्ष्म वेद भेद जो पावै । अजर अमर होइ लोकसिधावै ॥
लोक दीप औ प्रकट बखानौ । धर्मनि सुरति निरति सो ठानौ ॥
तीनिलोकते भिन्न पसारा । सत्य लोक पुरुष दरबारा ॥
पुष्प दीप जहैं पुरुष स्थाना । आदि पुरुष जहैं बैठ अमाना ॥
सूरय सोरह जोति निवासा । ऐसा एक हंस परकाशा ॥
श्वेत दीप श्वेत विस्तारा । श्वेत मंदिर श्वेत द्वाग ॥
अजर हंस है श्वेत भाई । सदा अनंद रहै सुखछाई ॥
श्वेत छत्र सिंहासन छाजै । अनहद शब्द सदा धुनिगाजै ॥
अक्षय वृक्ष जहैं श्वेत सोहावन । श्वेत पुरुष श्वेत फल पावन ॥
श्वेत पान श्वेत पनवेरा । श्वेत सुपारी नरिअर केरा ॥

श्वेत मिठाई कदली मेवा । अजर आरती हंसक भेवा ॥
 सदा आरती हंस जो करई । अपने पुरुष चरणन रहई ॥
 असंख्यकमलश्वेत तहँ रहिया । सप्त पाखुरी कमल जो रहिया ॥
 पुरुष गुप्त होइ रहे समाई । सूक्ष्म शीश तहां दरसाई ॥
 संपुट पद्म लाख है भाई । बानि उठै संपुट बिहराई ॥
 उघरे संपुट दर्शन पावै । अजर हंस तहवाँ सच्चु पावै ॥
 करत अनन्द सदा सुख भोगा । जरा मरण नहिं संशय सोगा ॥
 जग मग जोति सदा उजियारा । कोटि सूर्यते वर्ण अपाग ॥
 जहँ देखो तहँ शोभा छाजै । पूरण शोभा पुरुष विराजै ॥
 कहा बखानौ पुरुष सरूपा । वरणि न जाइ वह रूप अनूपा ॥
 जब लग तियापुरुष नहिं परसै । कहा बखाने सुख बिनु तर्मै ॥
 तिया पुरुष जब मिलिया भाई । तब सुख कछु कही न जाई ॥
 जिन जाना तिनही पहिचाना । जसे गूंगा सपना जाना ॥
 कहा बखानौ वरणि न जाई । गूंगा गूंगे सैन लखाई ॥
 ऐसा सतगुरु भेद लखावै । सुरतिवंत हंसा सच्चुपावै ॥
 वारू नदी अठारह गंडा । जेते तारा है ब्रह्मंडा ॥
 एते सूर्य जो वसै अकाशा । तऊ न पुरुषके सम परकाशा ॥
 पटतर तहां पुरुषकी दीजे । सतगुरु सैन समुझिकै लीजे ॥

छन्द-पुरुष शोभा कह बखानो कछु नहीं सम तूल हो ।

असंख्य सूर्य प्रकाशते वहाँ जोति अगमस्थूल हो ॥

सैन करि २ नैन भरि २ शब्द सतगुरु पर्व हो ।

पुरुष अवर न रूप जाको शोभा हंस लग दर्श हो ॥

झोरठा-उग्रगीत यह सार, गुप्त अध्याय उन्नीसमों ।

शब्द सुरति आधार, हंसा पहुँचे लोकको ॥

इति श्रीमदुग्रगीतायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥





अथ ग्रंथज्ञानस्थितिबोध ।

भारतपथिक कवीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।



जिसको

❀ खेमराज श्रीकृष्णदासने ❀

❀ बम्बई ❀

निज “श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम) प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शक १८४६.

इसका सर्वाधिकार “श्रीवेङ्कटेश्वर” यन्त्रालयाध्यक्षने स्वार्थीन रक्खा है ।

सत्य नाम ।



श्री कवीर साहिव ।



सत्यसुकृत, आहिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कु-
लपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र
नाम, दया नामकी दया वंश-
व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

द्वाविंशतिस्तरंगः ।

अथ ग्रन्थज्ञानस्थितिबोधप्रारंभः ।

सद्गुरुभ्योनमः ।

साखी-सतगुरु आये लोकसे, धरी देह जग आय ।
जीवनबन्ध निवारिया, बन्दीछोर कहाय ॥
अत्र पानिनिहिं भक्षिया, नहींगर्भ लीन्ह अवतार ।

पांचतत्त्व गुण तीन मथी, निर्गुण रूप सम्हार ॥
 ज्ञान विविधि विधि सब कछो, चौदह कोटि बखान ।
 नासो न्यारे राखिया, मूल ज्ञान निदान ॥
 चौपाई ।

धर्मदास वचन ।

धर्मदास उठि विनती कीन्हा । कृपासिन्धु मोहि दर्शन दीन्हा ॥
 जामें यह मन अस्थिर होई । सोई भेद मोहि कहो विलोई ॥
 विनथिर भये न होइ अनन्दा । मेटउ मोर भरमके फन्दा ॥
 आदि बचन मैं कहौ बिचारी । धर्मदास यह कथा निनारी ॥
 यह तो कथा बहुत अवगाहा । ज्ञान गम्य नहि पावे थाहा ॥
 ग्रन्थ अनेक कही बहुबानी । यह निजगम्य सुजनजनजानी ॥
 यह तो ज्ञान न काहू पाया । सो मैं तुमकहैं भाषि सुनाया ॥
 स्थित ज्ञान अब कहौ बखानी । जाते छूटे यमकी खानी ॥
 स्थितज्ञान बिनु मुक्ति कहैं पावै । भरमत फिरे काल सन्तावै ॥
 जोई भेद पुरुष कहि दीना । सोई ज्ञान स्थिति मैं चीना ॥
 साखी-यकचित यकमन होइके, रहे शब्द लौलाय ।

कहै कबीर धर्मदाससो, तब हंसा घर जाय ॥

धर्मदास तोहि कहौ चितार्ह । स्थितिज्ञान सुनौ चितलाई ॥
 पहले करो रक्ष मन नेहा । तबही बाढै शब्द सनेहा ॥
 जो सुने कहूँ चोर यह बैना । सुनिके करै अपरबल सैना ॥
 बीरा सार बालक कहूँ दीजै । सुरतिवन्त कह स्थिर कीजै ॥
 स्थिति ज्ञान जो पावे कोई । जरा मरणरहित सो होई ॥
 निर अक्षर वह नाम अगारा । ग्रन्थनसे वह रहत निनारा ॥
 अक्षर ज्ञानसार मैं भाषा । पुरुषभेद याहीमें राषा ॥
 यह पायहु तब आयव आई । धर्मदास मैं तुम्हें लखाई ॥

यमराजा जेहि देखि डराना । सोई शब्द अहै निर्वाना ॥
स्थिति भेद ज्ञान नहि पावै । कास फांस कैसे मुक्तावै ॥
गुरु होइ बहियां ताहि लखावै । योनी संकट बहुरि न आवै ॥
साखी-ज्ञानस्थितिके पायते, जीवन मुक्त होइ जाय ।
कबीरा आन पुरुषकी, समरस सेज बिछाय ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनति अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
स्थिति ज्ञान कहां तुम पावा । केहि कारण यह पुहुमी आवा ॥
सो अब मोहि कहो समुझाई । जाते मनको संशय जाई ॥
तुम प्रभु अहड्ड मुक्तिके दाता । आदि अन्त कहिये विख्याता ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं कहौ विचारा । हंसराज बड भाग तुम्हारा ॥
जबही हतो पुरुषके पासा । पुहुपद्मी सब दीप निवासा ॥
हंस दुखी भय कालके पासा । दया पुरुष तबै परकाशा ॥
अमरवचन प्रभु भाष्यो जब ही । पुहुपद्मीप विकसित भौ तब ही ॥
पुरुष वचन ।

जाहु सतायन तुम भवसागर । नौतम सुरति हौं हंस उजागर ॥
जीवन फांस कालने डारी । तिनसौं ज्ञानी करो उबारी ॥
भवसागरते जाय छुडाओ । अमरलोक हंसन बैठाओ ॥

सद्गुरु वचन

दाया होत चला मैं जब ही । भवसागर पग दीना तब ही ॥
देखेहुं यमराजहि वरिवंडा । त्रास दिखावत है नौखण्डा ॥
सब जीवन कहैं फांसी लावा । जब हम जाहिं तुमहिं डरपावा ॥
शब्दसार कीन्हों संधाना । धर्मराय तव देखि सकाना ॥

साखी-सोई शब्द तुमने कहौं, धर्मदास लेउ मानि ।

जीव मुक्तावहु कालसों, सत्य शब्द परमानि ॥

और बहुत सुमिग्न है भाई । बिना नाम नहिं काल नशाई ॥
धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनवै करजोरी । भाषहु मोहिं नामकी डोरी ॥
कैसे भयो नाम जो सारा । कैसे भयो सब विस्तार ॥
सो यह भेद कहौ गुरु स्वामी । करिय कृपा कहिय सुखधामी ॥
सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं कहौं बुझाई । स्थिति ज्ञान सुनौ चित लाई ॥
आदि अंतको नहीं निवासा । तब नहिं पुत्रलोक परकाशा ॥
तब नहिं जीव जंतुकी खानी । तब नहिं अमी अमिरसआनी ॥
तब नहिं देह विदेही चीन्हा । ज्योति शून्य नाहिं तब कीन्हा ॥
तब नहिं हतो अग्रको मूला । अग्रहि अग्र अग्रहो झूला ॥
अग्र डोरी विहंग है नाला । विहंग अग्र तहँ आहि बिशाला ॥
विहंगवास सबहिन मों लीन्हा । विहंग अग्र कोइ विरले चीन्हा ॥
विहंग अक्षर हते प्रभु सोई । विहंग नाम महँ रहे समोई ॥
अग्र विहंग नाम सुनि लीजै । निरखि परखि तामहँ चित दीजै ॥
सोई अंश तुमहिं सम तूला । जो यह गहै अग्र निज मूला ॥
साखी-विहंग नाम प्रताप सुनि, भयो सकल विस्तार ।

कहै कबीर धर्मदाससों, भाख्यो शब्द विचार ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । समरथ खसम जाउँ बलिहारी ॥
मोकहँ शब्द दीन्ह टकसाग । जीवन मुक्ति देइ भवतार ॥
विदेह नाम गुण कहो बखानी । जासो यमकी होवै हानी ॥
सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं कहौ बिचारा । राखो गुप्त गुप्त अनुसारा ॥

अगर विहंग सुरति भउ जबहीं । हंस सुजन जन प्रगटे तबहीं ॥
 विदेही अंग थाऱ्यो प्रभु आर्ह । विहंग इच्छा तबहीं उपजाई ॥
 बिदेह देहधरि भौ उजियारा । सूर्य उदित मृदित भये तारा ॥
 देह धरे हाथ औ पाऊँ । रतन रंग बहु रंगवाऊँ ॥
 वहतो नाम सुजन जन चीन्हा । दया कीन्ह प्रभु हमहूँ दीन्हा ॥
 सजीवन नाम आदि प्रकाश । हंस सुजन जन कीन्हनिवासा ॥
 साखी-जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार ।

कहैं कबीर धर्मदाससों, उतरे भव जल पार ॥

धर्मदास वचन ।

चरण टेकि बिन्ती अनुसारी । साहब बचन जाँव बलिहारी ॥
 प्रथम स्थूल कहो समुझाई । बिदेह रूप जब पुरुष रहाई ॥
 केतिक सज्याको परमाणा । जहँवा आप कीन स्थाना ॥
 सोइ भेद प्रभु कहो निनारा । जीवन जन्म मुक्ति होय मोरा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम बिन्ती कीन्हा । अगम पंथ काहू नहिं चीन्हा ॥
 मैं पाया सतगुरुकी दाया । धर्मदास मैं तुम्हें लखाया ॥
 जेहि बिधि पुरुष रूप संधाना । सो सब तुमसों कहौ निदाना ॥
 अग्रमूल विदेह स्थाना । सोइ नाम सुजन जन जाना ॥
 अब लों लङ्ग द्वीप दिखलाऊँ । बाग्ह पलंग विस्तार सुनाऊँ ॥
 बीजक अमान अखंडित द्वीपा । सत चैतन आनन्द समीपा ॥

साखी-अन्तरिक्ष छः पालंगभरि, लोलंग द्वीप स्थान ।

तहां सो सब उत्पति भई, यही परमपद जान ॥

कंचन हेम द्वीप उजियारा । तहांते उत्पति भई हमारा ॥
 तेग्ह पालंगा है सो ठाऊँ । तिल प्रमाण मेज्या निर्माऊँ ॥

अस्थल रूप राई परमाना । प्रगटे महा नाम संधाना ॥
 कला अनन्त अनंतहि धावा । बरनत जीव लक्ष नहि आवा ॥
 सत्य शब्द पावै परवाना । सोई हंस वहाँ करत पयाना ॥
 जो नहि गहत शब्द सहि दानी । सो पुनि परे नर्ककी खानी ॥
 सुरति निरति ज्यों लौं लौलावा । सो हंसा जग बहुरि न आवा ॥
 एही नाम सम्पूरन सही । एही नाम हंसा निर्वही ॥
 मूलदीप तब नहीं निमासा । प्रथमहि श्रुती पुरुष प्रकाशा ॥
 वही सुरति सब रचना कीन्हों । मूल शब्द हिरदै धर लीन्हों ॥
 पुरुष गले पुद्गुपकी माला । हाथ अमर अंकुर रिसाला ॥
 कहै कबीर सुनो धर्मदासू । एही मूल सब लोक प्रकाशू ॥
 और नाम बहुत कहे भाई । पुरुष नाम हंसा लपटाई ॥

साखी-यही शब्द दृढ़ कर गहो, कहे कबीर समझाई ॥

अग्र विदेही नाम गहि, अग्र रूप हो जाई ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विनवै कर जोगी । साहेब कहो ज्ञानकी डोगी ॥
 जाते मन चित्त अस्थिर होई । चरण प्रसाद पाव वर सोई ॥
 महा कठिन भवसिंधु कराला । लीन्ह उवारि काटि यमजाला ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । हंस राज बड भाग तुम्हारा ॥
 और ध्यान सुभिरन हम भाखा । विदेह नाम सोइ न्यारे राखा ॥
 सो अब तुम कह दीन्ह चिन्हाई । देह विदेह लेहु निर्माई ॥
 भाग बडे वादीके कहिये । सुरति शब्द महीं बासा लहिये ॥
 नाम महात्म कहां समुझाई । जेहि प्रताप यम देखि डराई ॥
 ध्यान विदेह यहै परभाऊ । इकोत्तरसे पुरुष तरि जाऊ ॥
 सार शब्द सों चित नहि लागा । सोई जीव बड आहि अभागा ॥

साखी-अब मैं कहव तोहि सों, ए चित करो विचार ।

कहे कबीर पुरुषको, यही रूप निज सार ॥

चौपाई ।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा । अग्रमूल विदेह परकाशा ॥
 इच्छा पुरुष काया बंधाना । लीलागर दीप कीन्ह अस्थाना ॥
 सुजन हंस जन कीन्ह विश्रामा । धरै ध्यान पुरुषकर नामा ॥
 तहँवा पुरुष कीन्ह अस्थाना । अस्थल रूपको कहों ठिकाना ॥
 कंठमाल पुहुपनकी राजे । माथे प्रभुके छत्र विराजे ॥
 हाथ अमी अंकुर विचारी । जगर मगर शोभा उजियारी ॥
 उपमा काकहि बरनों भाई । कोटि भानु सो जायँ लजाई ॥
 भालरूप बरनन कहि कैसा । बीस सहस्र चंद्र लखि जैसा ॥
 शरवन शोभा देहु बताई । रवि सहस्र तहाँ रहे लजाई ॥
 चक्षु अमीकर चिनवन कैसी । सुधा सिंधु लहरें उठ जैसी ॥
 नासा ग्रीवा कंठ कपोला । शोभा इनकी आइ अतोला ॥
 मुखारविंद अगविंदहि जानी । उदय कोटि सूरजकी खानी ॥
 उभय हंस अधरमो विहरै । दामिनि दशन उठत जनु लहरै ॥
 भुजा बाँह मन चिकुर बनाई । हृदय राखि उर कलित लजाई ॥
 साखी-कटि नाभि पिंडुरी जँवनि, नख सिख बहुत अनूप ।

झलझलान झलकत महा, शब्दहि रूप सुरूप ॥

चौपाई ।

निगम नेति नेतिहि करि धावै । तिनको रूप बरन को पावै ॥
 मन बुधि चित पहुँच नहिं तहाँ । अवरण पुरुष विराजे जहाँ ॥
 जहाँ लों निजमन दर्शन पावा । तहाँ लगि वरगणि कबीर सुनावा ॥
 अगम अगाध गाधमो नाहीं । ज्योंके त्यों प्रभु सदा रहाहीं ॥
 अग्र नाम पुरुषके बरणी । भवसागरकी है यह तरणी ॥

ध्यान बीच जिन कीन्ह समझाग । ते चढ़ि हंस होहि असवारा ॥

साखी—कहे कबीरा धर्मदाससों, पहुँच लोक मझार ।

लीलागर दीप जहँ पुरुष है, हंसा करत बिहाग ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास जो बिनती कगहीं । वचन विचार मुखै उच्चरहीं ॥

तीन लोकमें व्यापक काला । धर्मराय जिव कीन्ह बिहाला ॥

इहि भूमि यम जाल पसाग । नेम जाप षट करम अचारा ॥

इहि बिच सबही दुनी भुलानी । नाम सार काहू नहिं जानी ॥

एक मंत्र काहू नहिं पावा । पेड़ छोड़ डारही भुलावा ॥

प्रथम पेड़को पालन कीन्हा । पेड़ मगम काहू नहिं चीन्हा ॥

सद्गुरु वचन ।

पुरुष पेड़ निरंजन है डारा । त्रिगुण शाखा प्रति संसारा ॥

सत्य नाम नहिं जाने कोई । मारशब्द बिन गैबी गोई ॥

साखी—नाम महातम भाषहिं, धर्मदास समझाय ।

जो नर प्राणी नाम बिन, ताहि काल धरि खाय ॥

चौपाई ।

निवृत्ति ज्ञान जीवन समझावहु । अजर नाम सो गुप्त छिपावहु ॥

जो जियरा होवै अंकूरी । वासे कहीं शब्द भरपूरी ॥

जिह्व कहीं तो जगत रिझाई । प्रकट कहीं तो काल नसाई ॥

उपजै बिनशैको संसारा । कैसे पूजै काल अद्वारा ॥

साखी—परकट जनि भाखहु, हिगदै धरो छिपाय ।

बीरा है समझायहु, सत गुरु येहि लखाय ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । बिन पांजी कैसे निरतारी ॥

पांजी भेद कही विर छानी । जाते मिटे जन्मकी खानी ॥

पांजी भेद पावा नहिं कोई । ताते गयो बिगोइ बिगोई ॥
 देहि बीच जोहि लखि पावा । ताकर आवा गमन नशावा ॥
 जब तक आप चीन्ह नहिं परई । तब लग काज न एको मर्गई ॥
 सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं कहों बिचारी । पांजी भेद कहों अतिभारी ॥
 पांजी डोरी चित्त न धरई । मिथ्या दोष गुरुन कहैं करई ॥
 यही भेद है अगम अपारा । अब मैं कहों सकल व्यवहारा ॥
 जो चीन्है सो दरशन पाई । हंसहि हंस मिले पुनि जाई ॥
 अनुचिन्त बचन हमारे धरई । यमकी डगरी जाय सो करई ॥
 माखी-पांजी कहों समुझायके, मन बिच लोकहि जाय ॥
 मूलशब्द निर्बाण है, कहे कबीर समुझाय ॥

चौपाई ।

मूल शब्द है गुप्त जो साग । बिरले पावै शब्द हमारा ॥
 सत्य वचन अस्ती ना माने । गहे हंस सो पहुँच ठिकाने ॥
 अग्र अचिन्त सुगति सोहंगा । एहि मूल गहि हंस विहंगा ॥
 अग्र विहंग नारा जो पावै । तबहीं हंसा घरको आवै ॥
 विहंग शब्द जाने नहिं कोई । सो तो गये बिगोइ बिगोई ॥
 सुरति विहंगता लै चित जोरी । विहंग नाम विहंग है डोरी ॥
 विहंग हंस विहंग है बीरा । निज सोकाम ये कहैं कबीर ॥
 विहंग शब्द विहंग है नाला । विहंग पुरुष संग हंस बहाला ॥
 सातों नाल जो आय विहंगा । विहंग पनाल आहि जलरंगा ॥
 तहैं बैठी जलरंगी शाला । बायें कर पृथ्वीकी नाला ॥
 ता ऊपरहि कर्म अवतारा । कहैं कबीर भेद टकसारा ॥
 लघु दीर्घ अक्षर नहिं जाना । कैसे संत होइ निर्वाणा ॥
 एहि भेद जिनही लखि पावा । तिनके काल निकट नहिं आवा ॥

सोई मिद्ध संत है भाई । सोहं नाल चीन्ह जिनपाई ॥
 पुरुषहि सम शिख सेज विछावा । जिन निज शब्द हमारा पावा ॥
 नालहै मत्त पुरुषकी स्वासा । सो नाल पतालमें बासा ॥
 तहां है पांजीको दरवाग । ता चढि हंस उतरिगो पारा ॥
 पाँच नाम तिहका पगवाना । जो कोइ साधु हृदयमें आना ॥

पाँच नाम ।

साखी - आदि उदित अति अजगमन, मत्त सिंधु निज नीर ।

अदल अदल सोहं गहै, सादब कहै कबीर ॥

चौपाई ।

यही मत्त नाल हैं सही । यही हंस नाम निगवही ॥
 सतनालके सातों नामा । बीर बिहंग करै सब कामा ॥
 सिंधुनालमें हंस पठाए । पुहुप नालमो सकल सुहाए ॥
 अमीनाल महँ हंस पयाना । सुरति नालसे इस सिधाना ॥
 अग्रनाल महँ कगन अहाग । सोहंग नालको सकल पमाग ॥
 अजर नाल घट कीन्ह विचारा । तबै पुरुषका दर्श निहारा ॥
 सत्त नाल हैं एके गाऊं । सोई सुरति भेद निज पाऊं ॥
 सद्गुरु मिले वस्तु निज पावै । बिन सद्गुरुका भर्म मिटावै ॥
 सद्गुरुदया सबै कछु पाई । बिन सद्गुरु वह जाइ नशाई ॥

साखी-सद्गुरु बडा सुनार है, परखे वस्तु भंडार ।

सुरतिहि निगति मिलाइके, मेटि डार खुटसार ॥

सतगुरु सांचे शब्द हैं, कायाके गुणवान ।

जीवनमुक्त शब्दहि मिले, महा पुरुषके ज्ञान ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विनती अनुसारी । मैं सब पायब तुम बलिहारी ॥
 बलिहारी सतनाम तुम्हारी । जाते भयो सबै निस्तारी ॥

अब प्रभु मोपर दया हि कीजे । भेद अमीको मोहि कहि दीजे ॥
अमी अंक केहि कारण कीन्हा । वह तो अंक मोर नहि चीन्हा ॥
सो प्रभु मोकहैं देहु चिन्हाई । अंक विस्तार कहो समुझाई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मनि तुम बिनती अनुसारी । सोई भेद अब कहो विचारी ॥
ज्ञान स्थिति हम कीन्हा बखानी । जाते भई सकल उत्पानी ॥
जबही देह धरी प्रभु आई । अमी अंक है अंक बनाई ॥
अशर नाम देह धरि आई । अंक यही में कहो बुझाई ॥
स्थूल धरो साहिब एहि कारन । बिन अस्थूल न वस्तु उचारन ॥
मूलहि अंक विदेह विचार । देह धरी नामहि संचारा ॥
जो नहि होत नाम परभाऊ । तो सब जगतकाल धारिखाऊ ॥
जोकहैं लेइ नाम टकसारा । देह छूटी जाय पुरुष दुवारा ॥
जबही नाम लतहैं हंसा । तबही काल मगत है संसा ॥
तारण हंस देहमें धरहूँ । यमको मारि मुक्ति मैं करहूँ ॥
नाम प्रताप सबै कछु भाखा । सुमिरत हंस बोल हम राखा ॥

साखी—हंस उबारन नाम यह, कहै कबीर बखानि ।

जाय जीव सतपुरुष घर, धरमराय पछितानि ॥

चौपाई ।

अमी अंक जब ही प्रभु कीन्हा । उत्पति सकल ताहि हम दीन्हा ॥
पुहुप दीप सब दीप निवासा । तीन लोक याते परकाशा ॥
स्वर्ग पताल भयो पुनि सबही । अमी अंक पुरुषहि किय जबही ॥
चन्द्र सूर्य सकलहि विस्तार । अमी अंक सो भयो संसागर ॥
अमी अंक दोइ रूप बनावा । पुरुष शक्ति सो नाम कहावा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारा । अमी अंक ते सब संसागर ॥
अमी अंकके गुण हैं ऐसे । सोरह सुत उत्पत भये तैसे ॥
अमी अंक जब नाहीं कीन्हा । तबही सुनहि शब्दमें चीन्हा ॥

सोही अंक कही अब तुमसों । अंक प्रभाव सुनो तुम हमसों ॥
 अमी अंक तुम गखि छिपाई । सुरतिवत कहुँ देहु लखाई ॥
 अंक बिना पारस नहिं जोई । पारस बिना मुक्ति नहिं होई ॥
 पारस लोहा कंचन सोई । पागस बिन पहुँचे नहिं कोई ॥
 पारस परस गुरु शिर नावा । गुरु पागस परसे सतभावा ॥
 सारशब्द है बीजक ध्याना । पारस आहि मूल स्थाना ॥
 तब सुकृत मिलि सत्य समाना । सत्य शब्द निश्चय करिजाना ॥
 सिखापन मानि पुरुषकर लीन्हा । बलि तुम्हार हम पारस दीन्हा ॥
 नाम तुम्हार न धोखे डारों । घट भीतर सो कबहुँ न टारों ॥

साखी-सब धोखा कौ मेटिके, पागस पगसे संत ।

कबीर कहै धर्मदाससो, मेटों भवका अंत ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास चित बहुत हुलासा । ज्यों रवि उदय कमल परकाशा ॥
 दयासिन्धु पूरण गुरु स्वामी । कीन्ह कृतारथ अन्तर्यामी ॥
 अविचल नाममोहिं कहदीन्हा । सकल जीव आपनकर लीन्हा ॥
 जो जिय नाम तुम्हाग पावै । आवागमन रहित घर जावै ॥
 साहेब कहिये शब्द बिचारी । जाते छूटे भ्रमकी बारी ॥
 अन्त समे बालक कर आही । तब यम मूझ परै कहि नाही ॥
 समय साधिबालक नहिं जानै । कैसे बाचै जीव अयानै ॥
 यमकी घरी पहुँचे जब आई । तहाँको भेद कहां समुझाई ॥
 वह बाचै यम जाइ हेराई । कष्ट परै सब सुधि विसराई ॥
 जड़ चेतनको है यह चरो । कैसे भवसे होत उबरो ॥

सद्गुरु वचन ।

पुरुष अंश सुकृत तुम आगर । भलमति पूछब धर्मनि नागर ॥
 सो समुझाई कहूं तोहि रंगु । जाहि रंगभौ यमको अंगु ॥

जब आवै बालकके पाहा । पलटे देह धरै निजु नाहा ॥
 भक्तिरूप धरि आवै सोई । सस्तक श्याम फेर नहिं होई ॥
 जब जिय नाम करै सम्भारा । तब यमकी जड़ होवे छाग ॥
 शब्द सिंधुमें रहै समाई । तहां यम कबहुं निकट नहिं आई
 शब्दविचार बारि दृढ़ करहीं । मूल हंस रखवारी धरहीं ॥
 जब फिर चाहें करन पयाना । अग्रज नाम करी संधाना ॥
 साखी-वंश छांय वीग लिखो, नाम सन्धि चित लाय ।

कहे कवीर निःशंक हो, हंस लोक कहैं जाय ॥

जब सटहार चले लै हंसा । सत सिंधु पहुँचत गइ संसा ॥
 सत सिंधु आसन जो करहीं । हृदय रूप हंसा सब धरहीं ॥
 आगे लेन हंस तहैं आवहि । आरति साजि चीर पहिरावहि ॥
 कुशल क्षेम पूछे सब कोई । यमकी लज्याकिहि विधि खोई ॥
 कहि प्रसाद आइ यदि ठाँऊँ । केहि कर्मी पहुँच इहिं गाँऊँ ॥
 तवै हंस उठि बोलै बेना । गुरुप्रसाद पाया निज नैना ॥
 गुरु मोहि वह नाम सुनाई । तेहि प्रनाप आये इहिं ठाँई ॥
 तबही हंस पुरुष सौ कहई । हंसन चाह दर्शकी अइई ॥
 साखी-नाम महात्म करवीको, तहि प्रसाद सो आइ ।

बिनय करत अभिलाख चित, पुरुषहि दगस कगइ ॥

चौपाइ ।

पुरुष बुलाइ हंस कह लीन्हा । हंसन सकल डण्डवत कीन्हा ॥
 दीन सिंहासन क्षत्र जु धरहीं । हंस सुजन जन दर्शन करहीं ॥
 सिंहासन बैठी सुख पावा । शब्द अहार पुरुष संग आवा ॥
 जन्म मरनकी भूख बुझाई । सब सुख भुगते अग्र अघाई ॥
 निरंजन सुख मुधि नहिं पावा । ब्रह्मा विष्णु वैठि पछितावा ॥
 बहतो हंस कहां उड़ि गयऊ । आदि अंत काहू नहिं लयहू ॥

साखी—यह सुख ज्ञान स्थितिहिमें, जो कोइ भुगते आय ।
धन्य भाग्य वा हंसके, कहै कबीर समुझाय ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदाम बिनवैं करजोरी । देह विदेह कहिब कछु थोरी ॥
कवने कमल उठत है बानी । कवने कमल शब्द सहिदानी ॥
कवने कमल मूल अस्थाना । कवने कमल सुरति पहिचाना ॥
कवने कमल ब्रह्मालिय वासा । कवन कमल है जीव निवासा ॥

सद्गुरु वचन ।

अक्षय कमल सुशब्द उचारी । सुरति कमल बानी अनुसारी ॥
श्वेत कमल निर्गुण अस्थाना । भँवर गुहा मूलहि पहिचाना ॥
कंबु नाल मूलके पासा । तइवां ब्रह्म लीन है बासा ॥
अष्टकमलते उठे जो बानी । कुसुमहि दल ताके परवानी ॥
बंकहि नाल बंकहै घाटा । जो हंसा चीन्है वह बाटा ॥

साखी—बंक नालनी नवारिके, भिन्न भिन्न कर लेख ।

भँवर गुहामें पैठिके, वरयारी कर पेख ॥

सुरति कमलके बीचमें, सद्गुरुको विश्राम ।

सहस्र जाप अजपा कही, पूरुपको निजधाम ॥

चौपाई ।

द्राच्छकमलमें झिल मिल तारा । अलख सरूपहिको विस्तारा ॥
विषम सरोवर है तेहि ठाँई । मान सरोवर परै रहार्ह ॥
मान सरोवर दहिनो देही । सद्गुरु पंथ तहां हो लेही ॥
आप कमल तेहिकहीं बखानी । बिरले जन कीन्हों पहिचानी ॥
पारब्रह्म बस अधर अटारी । जगमग ज्योति जहां उजियारी ॥
हीरा रतन जटित बहु भांती । लाल अमोल गने को पांती ॥

रत्न कमल पै सत्य विराजे । हिरमर हंस संग बहु छाजे ॥
 गोरख दंत पहुँचि नहिं कोई । पाख्रह्य अस भवन है सोई ॥
 ये सब अटकहिं मुनि मंझारा । सत्य पुरुष नहिं कीन्ह विचारा ॥
 चउदा कमल महँ सुन्न विराज । द्वादश कमल गगन धुनि गाजे ॥
 भर्म भूलि अटके तहां ज्ञानी । भर्महिं भर्म भर्म लपटानी ॥
 सुर नर मुनि पवनहि अवराधे । सिद्धहु बारे उनमनि साधे ॥
 नाभी मण्डल पवन किवारा । तहँ लगि गमी कीन्ह टकसारा ॥
 हमरा घर कहुं बिरलन बूझा । ऊर्ध्व कमलका पंथ न सूझा ॥

साखी—सुरति कमलपर बैठिके, अमी सरोवर चाखि ।

कहै कबीर बिचारिके, संत विवेकहि भाखि ॥

ऊर्ध्व कमलके ऊपरै, परिमल बास सुबास ।

अमी कमल महँ बैठिके, दर्शन दर्श हुलास ॥

चौपाई ।

उत्पतिको वह वृक्ष बखानी । प्रलय कबहुं होवे नहिं हानी ॥
 पिण्ड मांह वह वृक्ष बताऊँ । अगम अगोचर गम नहिं पाऊँ ॥
 अगम गोष्टि तुम पूछन लाई । सुनो धर्म अब कहौं बुझाई ॥
 अगम गोष्टि अगम व्यवहारा । अगम पंथ हम कहौं विचारा ॥
 अब मैं कहौं जो गम्य बखानी । अगम गोष्टि काहू नहिं जानी ॥
 उत्पति सब मैं तुम्हें सुनावा । ये हमते कोउ जानि न पावा ॥
 उत्पति सुनु वा वृक्षकी भाई । प्रलय तरे वह कबहुं न आई ॥
 जासों कहौं अमरपुर गाऊँ । बिना बीज वह वृक्ष रहाऊँ ॥
 बिन धरती अंकूरहि आनी । पानी रंग नहीं उत पानी ॥
 मूलवृक्ष वह पुरुष बखानी । शाखा तासु निरंजन जानी ॥
 डाली ब्रह्मा विष्णु महेश्वर । पत्र तासु संसार नरेश्वर ॥
 सत्य सुकृत जहँ कर विश्रामा । अच्छय वृक्ष जाकर है नामा ॥
 पत्ररूप संसार बखाना । धर्मदास लेखवो यह ज्ञाना ॥

साखी-पानीमें सबउपजहि, पानि जान सब कोइ ।

जासों पानी उपजा, सो रँग कैसो होइ ॥

चौपाई ।

रंगहि रंग रंग उपजाया । एक रंगसे सब रँग आया ॥

बहुरंगीसे पानी भयऊ । पानी रंग नाद जो कियऊ ॥

नाद रंगमे वेद उचार । वेद रंगसे भयो संसार ॥

साखी-हीर डोरको भाव यह, संत सुजाना देखि ।

कहे कवीर विचारिके, रंगहि रंग विशखि ॥

पुरुष डोर तुमसों कही, सुनो संत चित लाइ ।

धन्य भाग्य वह जीवके, ज्ञान स्थित जो पाइ ॥

चौपाई ।

सो सब तोहि कहिच चित लाई । परति लेहु हियको समुझाई ॥

पांच तत्त्व जो प्रकटे आई । पांच तत्त्व वे गुणत रहाई ॥

सोइ तत्त्व तुमको न सुनावा । हृदये भीतर गुप्त छिपावा ॥

कौन शब्दसे तत्त्व जो आऊ । सो अनुसार तोहि समुझाऊ ॥

विदेह तत्त्व अगरको मूला । सोम तत्त्व आही अस्थूला ॥

अनुप तत्त्व सब दीप बखानी । अनुप तत्त्व सब दीप बखानी ॥

अंकुरतत्त्वसों सबकछु कीन्हा । ताको मरम न काहू चीन्हा ॥

पाँच तत्त्व प्रकटै दुनियाई । तामहँ जीव रहे अरुझाई ॥

आप तेज वायु तत्त्व बखानी । पृथ्वी अकाश देह सब जानी ॥

धर्मदास वचन ।

कौने तत्त्व रची है देही । कौन तत्त्व है फूल सनेही ॥

कौन तत्त्व सो देहमें आवा । कौन तत्त्व निज मूल कहावा ॥

सतगुरु वचन ।

अजर तत्त्व निःस्वादी कहेऊ । पुहुपतत्त्व निजमूलहि लहेऊ ॥

अमी तत्त्वकी देह बखानी । अजर तत्त्वमूल पहिचानी ॥

साखी-अमरपुरीको येह गुन, अमर हंस होजाइ ।

कबीर ज्ञान स्थिति बिना, जीव प्रलय तर जाइ ॥

चौपाई ।

नाद प्रकट बिंदुहिं सो भयऊ । बिन्दु प्रकट नादहि जो लहिऊ ॥
शब्द भेदते श्वास जो जानी । श्वासरूप शब्दहि पहिचानी ॥
नाद बिंदु जब नाहीं रहिया । तबकी बात तुमहिसों कहिया ॥
अमी अधर कीनी जब ग्रामा । नीर ब्रह्म लीनो विश्रामा ॥
नाद निरञ्जन प्रकटे जबही । श्वास प्रेम गुरु कीन्हो तबही ॥
बिन्दु सकलसे भयो पसाग । देह बिदेह सो रहत न न्याग ॥
जब नहिं धरती नहिं आकाशा । तब नहिं सहज कूर्म परकाशा ॥
चकित अण्ड चौकरे सुचंदा । हमें देखि करि सहज अनंदा ॥
सारशब्द कबीरहि जाना । अंगहि अंग आहि बिहराना ॥
फूटा अंड कटे तब अंशा । योग जीत उपजे निःसंशा ॥
नहिं तब धरती नहिं आकाशा । साखी शब्द नहीं परकाशा ॥
तबही पुरुष कहाँ धौं रहेऊ । कौन तत्त्वमें बासा लहेऊ ॥
गुप्तहि तत्त्व गुप्त अस्थाना । गुप्त वस्तुमें रहे निदाना ॥
गुप्त हते तब प्रकटे भयऊ । अमर दीप उच्चारण लयऊ ॥
शब्द उचारो अमर अखंडा । बीरा सार विदेही पंडा ॥
तादिन पुरुष आप जो रहते । कौन पिंडमें वासा करते ॥

साखी-गईभर जो वस्तु थी, गई भर अस्थूल ।

लहर लहर दिल अंदग, तहाँ पुरुषको मूल ॥

चौपाई ।

जब नहिं हते कूर्म नहिं कामा । आदि पुरुष कीन्हो निज नामा ॥
नाम सार हंसा जेहि पावा । वो जन चार काल पहुँचावा ॥

पहुँचावतमें कछु दिल मोरा । वारी लांघि सकै नहिँ चोरा ॥
 जो बोले तो शिर छिन जाई । खूट गहे तो अंग नशाई ॥
 सारनाम सतगुरुने दीना । ताते धर्म शीस पर लीना ॥
 जो कोई कर्म नाम मई वासा । ताकई होइ न काल तरासा ॥
 नाम प्रताप काल नश जाई । काले खेले पुरुष प्रजाई ॥
 नौ दल गुप्त हृदयमें टीका । अमर मोक्षपद पावै नीका ॥
 नौदल नाम जो कहौ बिचारी । षटदल काटि जो बाहर डारी ॥
 शुभ दल शुभ चित बन भरमा । भये दल क्रोध संत तज कग्मा ॥
 अस्थित दल राखे निज मनको । पहुँचे हंस लोक सुरजनको ॥

साखा—यहि गुण ज्ञान स्थितिहिमें, शब्द सिंहासन सार ॥

कहे कवीग नाम बल, पहुँचि पुरुषके द्वार ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनवे कर जोरी । साइब कहौ नामकी डोरी ॥
 अगम निगम शारद औ शंशा । तुम दाता मांगन सब देशा ॥
 कहो बचन प्रभु हृदय बिचारी । कैसे कूर्म लीन अवतारी ॥
 आदि ब्रह्मका कहौ निवासा । केहि विधि लीन कमलमें बासा ॥

सतगुरु वचन ।

धर्मदास में कहौ बुझाई । अकथ कथा कछु कही न जाई ॥
 आदि अन्तको नाहिँ निवासा । श्वासा सार पुरुष परकाशा ॥
 बिना नालको कमल अनूपा । पूरुष तामहँ कही सहूपा ॥
 तबही भई अधर सों बानी । बिन रसनावह अगम निशानी ॥
 बिनहि बिंदु जिद एक कियऊ । अजय अपार सरोवर लियऊ ॥
 अष्ट कमल तहां कीन्ह प्रकाशा । अष्ट पुत्रको तहां निवासा ॥
 अटताल सुत नाम घरावा । अब मैं कहौ नाम परभावा ॥
 मनसा बुद्धि निरञ्जन कीन्हा । सहज सुरतिसों उतपति लीन्हा ॥

रंग रेख कर्म उपराजू । सरवन सुरति वहे गुण छाजू ॥
 योग संत इनको बिरमाए । तिनको अंत न काहू पाए ॥
 सुकृत अंश भए तेहि ठाउँ । सोई सुरति अर्चित बनाउँ ॥
 आठ अंश ये उपजे भाई । ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब समाई ॥
 पुरुष सहज सो भाषे लीना । दीप एक तुमहुँ कहूँ दीना ॥
 अमो दीप प्रदीप निवासा । गर्भते कूर्म तहाँ परकाशा ॥
 तबही पुरुष कूर्म उपराजा । बाहर पलंग रूप तेहि छाजा ॥
 उपजे कूर्म पृथ्वीको भारा । सोरह पलंग दीप विस्तारा ॥
 रचना सबहि कूर्म कह दीना । इहतो चरित सहज नहि चीन्हा ॥
 साहब चरित लखे नहि कोई । सुगति पुत्र उपराजे सोई ॥
 महा अपर्बल है अधिकारी । पूरुषके कहिये भण्डारी ॥
 दया करी सुरतीको जबही । सुगति अंश उपराजे सबही ॥

साखी-ज्ञानस्थितिके यहे गुण, सुगति कूर्म उपजाइ ।

कहै कबीरा नाम बिन, जीव अकारथ जाइ ॥

चौपाई

कूरम उदर बिदारो जबहीं । चारों अंड फूट गये तबहीं ॥
 चारों अंड ब्रह्मांड सम्हारा । कृत्रिम वस्तु कीन्ह संसारा ॥
 कर्ता आदिपुरुष कर नाऊ । सोई नाम निगंजन पाऊ ॥
 फूटि अंड चौभंगा भयऊ । पाँचों तत्त्व तीन गुण ठयऊ ॥
 पंच अमीसे सब संसारा । पंच अमीका है विस्तारा ॥
 पंच अमीकर नाम न जाने । सो मन आन केल तन ठाने ॥
 अमी दहे है सकल जहाना । अमी रंगसे कीन्ह ठिकाना ॥
 अमी वस्तु जिनही पहिचाना । पंच अमीको सकल जहाना ॥
 पंच अमीको नाम सुनाऊ । भिन्न भिन्न सब तोहि बताऊ ॥

अमर्क नाम ।

सिंधु सुअंशहि । १ । सुगंगको नाम । २ । सहजसुतमूलको नाम । ३ । अकहअमी । ४ । अंकअमी । ५ ।

साखी—कहि कबीर धर्मदाससों, पंच अमीको नाम ।

शब्द अमीसों जानियो, प्रकट भये गुणधाम ॥

चौपाई ।

अमी शब्द सुमिरे जो कोई । अमीस्वरूप होहि पुनि सोई ॥
अमी शब्द जिन नाही पायब । सोई जीव प्रलय तर आयब ॥
मूल शब्द राखे चित सानी । अमी शब्द मृष बोले वानी ॥
पाँच बेर सुमिरे नर कोई । ताकों आवा गोन न होई ॥
एहि शब्द में कहों बखानी । ब्रह्मा विष्णु महेश न जानी ॥
इह पुनि नहीं निरंजन पावा । धर्मदास मैं तुमहि बतावा ॥
शब्द अमी सुपुरुष लिख दीन्हा । एकहु अंक परै नहि चीन्हा ॥

साखी—कमल अंक पंखुरि अरु, सुरति बंध सुखसेज ।

कहि कबीर संशय गई, महापुरुषके एज ॥

ज्ञानस्थितके यही गुण, अमी अमी होजाइ ।

कहै कबीर धर्मदाससों, देह हिरण्मय पाइ ॥

चौपाई ।

धर्मदास उठ चिनती कीन्हा । तुमरी दया पन्थो सब चीन्हा ॥
अपनो भेद कहों विलछानी । जाते परै दरस पहिचानी ॥
वहै शब्द गुरु कहों प्रकाशा । जामें हवै सुकृतको दासा ॥
वही शब्दमें दर्शन होई । भिन्न भिन्न मोहि कहो बिलोई ॥
तुमहि सगुण तुम निर्गुण रूपा । कारण कारज कहिये भूपा ॥
तुम धरती तुम पवन अकाशा । तुमहीं चांद सूरज परकाशा ॥
जलथल भीतर कीन्ह निवासा । लोकद्वीप तुमहीं परकाशा ॥

तुमही माली तुम फुलधारी । तुम ही करता तुमरी बारी ॥
 तुम सागर जलहरी तरंगा । तुम मलीन तुम निरमल अंगा ॥
 तुम हो उडुगण पर्वत चंदा । मोमें तुममें हरष अनन्दा ॥
 तुम गुपाल तुमहो दिन राती । सुर नर मुनि गंधर्व तुम ज्ञाती ॥
 तुमही अलख तुमहि संसारा । तुमही द्वारि हर विधि अवताग ॥
 तुमही लोप अलोप अलेखा । तुमही गुप्त प्रगट सब देखा ॥
 तुमही पुरुष तुमहि हो प्रकृति । तुमही योग तुमहि जुगति गति ॥
 चारों युग तुम करत निवासा । तुम गमना देहीमों बासा ॥
 साखी-तुमहो दूसर अवर नहिं, तुमग सकल प्रकाश ।

करहु दया अब मोहिपर, सत्य नाम विश्वास ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदाम तुम विनती कीन्हा । हमरो रूप न काहू चीन्हा ॥
 अमरभेद अस्थलकै माहीं । जो पावै अस्थिर मन ताहीं ॥
 लीलंगर द्वीप पुरुष अस्थूला । वही द्वीप उत्पतिको मूला ॥
 गगन धरनि उत्पति सब नीग । काया बीर सुनाम कवीरा ॥
 याविधि पुरुष हमहि सों कहिया । बिन अंकुर जीव कहाँ रहिया ॥
 नाम हमार सुमिरै जो कोई । आवा गमन रहित सो होई ॥
 हमरा नाम लेत घर आवै । सुख सागर निर्मल हो जावै ॥
 नाम लेत जो काल डराई । सुमिरत नाम दूर हो जाई ॥
 हमरो नाम सार है भाई । जो चीन्है तेहि काल न खाई ॥

साखी-नाम हमारा मुक्तमणि, पुरुष आपदि भाखि ।

शब्द शिरोमणि सार यह, हंस सदा चित राखि ॥

चौपाई ।

येहि नाम लोके पहुँचावै । सुमिरत नाम पुरुष कहँ पावै ॥
 अब यह शब्द कहउ सम्भारा । मुनि हृदय महँ करो विचारा ॥

जाते दुःख द्वंद मिटि जाई । धर्मराय बैठो पछिताई ॥
 याहि नामको शिर्गह चढाई । यामें सब सुख विलसे आई ॥
 रूपट रूप धरिहें जो कोई । भ्रमकी डगर परे पुनि सोई ॥
 आदि शब्द सो नाम हमारा । जो बूझे सो उतरे पारा ॥
 धन्य भाग्य हंसनके कहिए । जो या नाम मुक्ति मन गहिए ॥
 सो करुणाकर बहुत उघाग । एक नाम चित लेय बिचारी ॥
 पाँच नाम ।

आदि अजर १ । अदली अदल २ । पुरुष निरक्षर नाम ३ ।
 मुक्तामणि प्रभुनाम जो ४ । सुख सागर विश्राम ॥

साखी-ज्ञानस्थितके येह गुण, नाम विवेकी पाइ ।

कहै कबीर धर्मदासको, हंस लोकको जाइ ॥

चौपाई ।

धर्मदाम चरणन चित धरही । बार बार विनवे अनुसरही ॥
 पाँजी नाम मोहि कहो बिचारी । जामें होय हंस निस्तारी ॥
 विन पाँजी कहा जाने भेदा । पाँजी नाम गुरु कहीन खेदा ॥
 सद्गुरु वचन ।

धर्मदास भल कीन्ह विचार । हंसगज बड भाग तुम्हारा ॥
 न म मिथु पायो तुम जब ही । पाँजी निर्भय पहुँचे तब ही ॥
 विन निर्भय कोई भद न आवे । विना भेद कैसे पहिचाने ॥
 कहे कबीर होइ गुरु दाया । तबही हंस अमर घर आया ॥
 अब सुनिये पाँजी को द्वारा । ता चढ़ि हंस उतरि है पारा ॥
 एक नाम एक चित हो देखा । तहाँ हंसा सुख सागर पेखा ॥
 पाँजी अद्भुत कहों सुमाग । ताते होय मुक्ति व्यवहार ॥
 सोइ शब्द उललित कर देख । तिल प्रपाण जहाँ द्वारी पेखे ।
 उठति पवन पश्चिमको घाले । गरजे गगन मेरु तहाँ हाले ।

अरध ऊर्ध्वविच कमल अपारा । दामिनि कोटि होत उजियारा ॥
पाजी नाम पंच दिल राखो । हंस उबारन कहि यह भाखो ॥

आकाशपाँजी ।

आदि अजर अदलीनिर नाम । सप्तसिन्धु है जियको काम ॥
सप्तसिन्धु पाजी ले नामा । सो यह परब्रह्मको धामा ॥
यही नाम जियको रख वारा । खोलो कुंजी कुलफ केवारा ॥
हस ले गए पुरुष दर्वाग । झिलमिल ज्योति झलक उजियारा ॥
नामि मण्डल पवन किंवारा । दुरे सुनीर मूलके द्वारा ॥
भए निरन्तर थकित शरीरा । धर्मदाम कह मिले कबीरा ॥
धर्मदास यह दिलकी पाँजी । यही नाम धरि बहुरे साँजी ॥
पिंड नाम सो दिलमें मूला । येहि नाम पहुँचे अस्थूला ॥

साखी-ज्ञानस्थितके येह गुन, पुरुष पाजी निज सार ।

यह पाँजी जब पावही, हंस होइ निस्तार ॥

चौपाई ।

हो सद्गुरुमें तुम बलिहारी । मिटि गई तिमिर भई उजियारी ॥
हों पतंग तुम भृंग गुसाई । आप सरीख कीन्ह एहि ठाई ॥
सप्त सिंधु पृथ्वीमें आहीं । सकल जगत इनहींके माहीं ॥
सप्त सिन्धु जो रहे पताला । सातनाल प्रभु कहौ रिसाला ॥
सातों नाल कवन विधि देग । जामें सुषुमण होइ निवेरा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास यह अकथ कहानी । बिरले हंस कीन्ह पहिचानी ॥
अगम विचार कीन्ह व्यवहारा । जासों भया सकल विस्तारा ॥
जबहीं हंसा तजे शरीरा । शब्द प्रताप होय गंभीरा ॥
सप्त सिंधु नर पावै कोई । सप्त सिंधुमें जाय समोई ॥
सप्त सिंधु आरम्भ न करई । त्यागि शरीर हंस गति धरई ॥
जाय करै सुख सागर बासा । मान सरोवर करहि निबासा ॥

सप्त सिन्धुके नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न सब तोहि लखाऊं ॥
 सप्त सिन्धु नर लखि पावै कोई । समता सिन्धुमें रहे समोई ॥
 योग सिन्धु अब कहों बखानी । अजावन सिन्धु लेव पहिचानी ॥
 अमर सिन्धु हंसा लखि पावै । अकह सिन्धुमें जाय समावै ॥
 सुखहि सिन्धु कीन्ह पैठारा । सतहि सिन्धुहि नाम उचारा ॥
 साखी-ज्ञान स्थितको पायके, मन सुस्थिर हो जाय ।
 कहे कबीर धर्मदाससों, पुरुष नाम समुझाय ॥

चौपाई ।

पुरुषहि नाम कहों समुझाई । धर्मदास हिय गहो बनाई ॥
 याही कारण अजपा कीन्हा । जीवन संधि परी नहिं चीन्हा ॥
 पुरुषहते तब मूलके ठाऊं । तब नहिं दीपलोक अवगाऊं ॥
 चौबिंश पुत्र तबे नहिं रहिया । तबही वचन अग्र जो कहिया ॥
 ता पाछे ओंकार जो कीन्हा । ओंकार सो सब रचि लीन्हा ॥
 साहब वचन सत्य फगमाया । सत्य शब्द अक्षर निर्माया ॥
 कबहुँ नाहिन अस्थिर होई । बार बार मन देइ बिगोई ॥
 काया भीतर आप लखावा । ताते अजपा नाम कहावा ॥
 याहि शब्दसे शुद्ध शरीरा । याहि शब्दसे मिले कबीरा ॥
 याहि शब्द हृदय सुख होई । निर्मल होहि विषहिं सब खोई ॥
 अस्थिर मनकर प्रफुलित राखे । नाम संधि हृदये महँ चाखे ॥
 निर्मल हंस होत है तबही । अमरलोक पहुँचि है जबही ॥
 सातों सुगति तबहि परकाशा । पुरुषहि को राखे विश्वासा ॥
 उत्पति शब्द जबे निर्मावा । सो अक्षर मिलि शिवहिं कहावा ॥
 शिवहि शब्दसों जीव कहावा । जीव नाम संसार कहावा ॥
 सातों नाल वाहिके अंगा । जिहि जग भीतर माडो रंगा ॥
 अक्षर शब्दसे शिव जो आवा । वाही अक्षर गुरू कहावा ॥

काशी मध्य मरे जो कोई । होहि पखान रूप तब सोई ॥
 चौगसीसे रहित जो होई । पाहन रूपहि जन्म बिगोई ॥
 शब्द संपूरन शिव जो जाना । त्यों सुकृतके बहुत परवाना ॥
 अक्षत ले आरति कर सोई । उन कर मंत्र कहत सब कोई ॥
 तारक मंत्र वयसको नाही । पण्डित शब्द गहत मन माहीं ॥
 यही मंत्र कहत सब कोई । साइब चरण न पावैं सोई ॥
 क्षमा गुरु निश्चय जो पावा । सद्गुरु शब्द अहर्निश लावा ॥
 क्षमा गुरु कहिए अविनासी । मानसरोवर तटके वासी ॥
 रचना भेद ले शिव कह दीना । यहि विश्वास मनहि कर लीना ॥
 भव सुर केहि शिखावन एहा । सनकादिक कर चरण सनेहा ॥
 यही प्रणालि गही सब कोई । गुरु निर्गुणकर भेद समोई ॥
 याहीमें सब परे भुलाई । द्रुतही जग कल्प बिताई ॥
 जो चाहे सुकृत कर लेखा । आप आप सो करे विवेका ॥
 उनकर चीन्हि अमरपद पाई । सूक्ष्म मुक्ति नाम गुण गाई ॥

साखी—यह गुण ज्ञानस्थितहिके, जो पावै निज नाम ।

अजपा जपै कबीरको, सो पहुँचै निज धाम ॥

चौपाई ।

शब्द पाय लोक जिन चीन्हा । नाम अखण्डित जब धरलीन्हा ॥
 मुक्तामणि निज नाम इमारा । हंस उवागहि भवसे पारा ॥

साखी—सोई नाम हृदय धरै, और जपे नहि जायें ।

मूल शब्दही गटन कर, मूल शब्द हो आप ॥
 करे निरूपण शब्दको, कहै कबीर बखान ।
 मूल ध्यान गहि पावही, सुख सागर अस्थान ॥
 मूल शब्दके यह गुन, अमी दीपक कहैं जाइ ।
 कबीर ज्ञानस्थित बिना, मूल नाम नहिं पाइ ॥

गुरु महिमा प्रारम्भः ।

चौपाई ।

गुरु होहि वहि ताहि लखावै । गुरु बिन अंत न कोई पावै ॥
 जिन गुरुकी कीन्ही पगतीती । एक नामकर भव जल जीती ॥
 गुरु पुरुष जिय करहि मराला । गुरु सनेह बिन काग कराला ॥
 गुरु दया गुरु शब्द दमाग । गुरु प्रगट है गुप्त अधारा ॥
 गुरु पृथ्वी गुरु पवन अकाशा । गुरु जल थलमहँ कीन निवासा ॥
 चंद्र सूर्य गुरु सब संसारा । गुरु गंधर्व गुरु सब व्यवहारा ॥
 गुरु ब्रह्मा औ विष्णु महेशा । गुरु भगवान कूर्म औ शेषा ॥
 चराचरहि जहँ लगि सब देखा । गुरु बिन कछू और नहिं पेखा ॥
 उत्तम मध्यम और कनिष्ठा । ये सब कीन्हे गुरु शरिष्ठा ॥
 ये सब जीव गुरुमय जानो । गुरुसे भिन्न अन्य नहिं मानो ॥
 कहै कबीर सो हंस पियाग । येहि भांति गुरु दरश निहारा ॥
 साखी-सो गुरु निशदिन बंदिये, जासों पाये नाम ।

नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥

चौपाई ।

गुरु चरण जे राखे ध्याना । अमर लोक वह करत पयाना ॥
 अमर कमल ज्यों रहैं लुभाई । या विधि गुरु चरणन लपटाई ॥
 तन मन धन न्योछावर राखे । दर्शहि पर्श अमी रस चाखे ॥
 चरण धोय चरणामृत पावै । पुरुष समीप पहुँच सो जावै ॥
 गुरु बिहून अमृत नहिं दीज । अमृत छाँड़ि विषय रस लीजे ॥
 साखी-महा पुरुषको नाम है, जा घट माँहि समाय ।

सोई सद्गुरु जानिया, अरु कृत्रिम सब पाय ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास विनती अनुसारी । समरथ स्वसम जाई बलिहारी ॥

जबसे दीन्ह मुक्तिकर बीरा । तीन ताप मिटि गई अधीरा ॥
साहब कहिये शब्द अनन्दा । जाते यमकर छूटे फन्दा ॥
चरणामृत कैसे कर लीजे । तीन शब्द मोसों कहि दीजे ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदाम में कहों विचारी । चरणामृत शब्दहि निखारी ॥
यदि पाये निज करहि अहारा । जासों यमकी छूटे धारा ॥
प्रथम भोर मुख उठिके धोवे । काल कष्ट यमद्वार बिगोवे ॥
फेर करहि शब्दको आशाना । वही शब्दसो मुक्ति निदाना ॥
बहुरि दिये महँ नामहि आने । नाम विदेह दरश पहिचाने ॥
नाम विदेही कठिन अपाग । ताहि चीन्हि कर करहुँ अहारा ॥
ध्यानबीज गुरुचित महँ आने । सुरति निरति पुरुषहि पहिचाने ॥
बहुरि शब्द आनंदित भाषे । मुख कहँ धोइ नाम रस चाखे ॥

साखी—इह गुण ज्ञानस्थितहिके, शब्द भेद निजसार ।

गुरुचरणामृत लेहि तब, होवे हंस उवार ॥

स्मरण ।

श्वेत मिठाई श्वेतहि पाना । श्वेत शब्द लेखनि परवाना ॥
योग सत्य इन दीन्हो बीरा । मनको उलटि खोज लै हीरा ॥
बीरा खाय भयो सुख भारी । प्रथम पुरुष ऊपर उजियारी ॥
दूसर सत्य गुरु नाम जो भावा । तीसर लक्ष्मी लै घर आवा ॥
चौथे जन्म मरण नहिं होई । जो चरणामृत पावै कोई ॥

साखी—कालफाँस नहिं आवही, तन्त्र मंत्र क्षयमान ।

वचन कबीर गुसाँइको, सत्य हि शब्द प्रमान ॥

मंत्रसम्पूर्ण ।

धर्मदास वचन ।

चरण टेक कर विनती लाई । कीन्ह कृतार्थ मोकहँ आई ॥

सब विधि धर्मदास पर दाया । मुक्ति युक्ति गुरु सबै बताया ॥
 साहिब कहिये शब्द उचारी । जौन शब्द मुखधोय निहारी ॥
 सोइ शब्द गुरु कहो बखानी । जाते जरै कालकी खानी ॥
 साखी-काल जरै कंटक जरै, गखों चितमें नाम ।

मनसा वाचा कर्मणा, जाय हंस निज धाम ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास यह शब्द उचारी । याही शब्दसों हंस उचारी ॥
 काल जैजाल मिटत हैं जबही । शब्द लेय मुख धोवै नवही ॥
 काया शुद्ध होइ निज वाग । मुख धोवै मोटे समारा ॥
 दिन दिन मुख उज्ज्वल तेहि केग । रविसमान मुख होय उजेग ॥
 अब मैं शब्द कहत मुख बानी । धर्मदास लीजे पहिचानी ॥

स्मरण ।

सिंघलद्वीप हंस कहां रहियऊ । पहले चार कबीर कहियऊ ॥
 बसले पानी मुख धोय । चंदन काटिके धोय मुख ॥
 सुरति करहि अस्नान । तेतिस कोटि सुरदेवता लखे अभ्यंतरधरिध्यान
 मुख धोवै मनमोही । और देह नहि जान ॥
 मनमें ध्यान कबीर करि । रखे चित्त पहिचान ॥
 मोरे माथे मन बसे । अवरहुँ मंदिल कोइ ॥
 सिंघलद्वीप ढिग बैठिके । कबहुँ न जाय विगोइ ॥

साखी-ज्ञानस्थितिके यह गुण, मुख धोवै सुर ज्ञान ।

कहै कबीर विचारिके, हंस होइ निर्बान ॥

चौपाई ।

धर्मदास यह धर्म अपारा । जासों होत दिगंबर भारा ॥
 दिगंबर देह होत जब भाई । स्नान शब्द जब गुरुसों पाई ॥
 यही शब्द धुंधलको दीन्हा । धुंधल राव मानि शिर लीन्हा ॥

मृतकहि देह धरे संसारा । बिना शब्द है काल अहारा ॥
 स्नान शब्द हृदयमें धरहीं । जीवनमुक्ति होइ भव तरहीं ॥
 यही शब्दसो धोवे अंगा । दिव्यदेह जानो परसंगा ॥
 जो कोइ करे शब्द अमनाना । ताकर धोखा जाय निदाना ॥
 लक्ष्मि दान करें नर कोई । जीव दया बिन मुक्ति न होई ॥
 जो धोवे निश्चय करि देहा । तबही कीज शब्द मनेहा ॥
 कटे शब्द अब कहो बखानी । धर्मदास लीजो शिर मानी ॥
 निरप प्रीतिकर शब्द स्नाना । ताकर दोष न रहे निदाना ॥
 स्मरण ।

राखी—अगम सगेवर विमल जल, हम बैठिके न्हाइ ।

काया कंचन मनमगन, कर्म भर्म मिटि जाइ ॥

पिटहिमों ब्रह्मांडहि जाना । मान सगेवर करि अमनाना ॥
 सोइ सोइ ताको जापा । लिखत न करें पुण्य औ पापा ॥
 पुण्य पापमे रहत न न्यारा । पेटि संत जन कगे विचारा ॥
 याहीविधि जो करि असनाना । सा इंसा करें लोक पराना ॥
 धर्मदास सुन शब्द विशेषा । गंगवारु इतनेह लेखा ॥
 स्मरण सम्पूर्ण ।

आदि अंत सब कहों बखानी । धर्मदास कीजो बिलछानी ॥
 मूलपुरुष काहु नहि जाना । सो तुमसो सब कहों बखाना ॥
 मूलशब्द तहाँ अग्र कहावा । अग्र विदेह अस्थूल सुभावा ॥
 मूलभेद काहु नहि पावा । मूलनाममें गुप्त छिपावा ॥
 कहैं प्रीति देखी मैं तोरी । तातें कहों मूल निज डोरी ॥
 मूलहि शब्द असंभव नामा । कहैं सुनै नहि पावै ठाना ॥
 चारलोक चार है नाउँ । चार चार सो बरन सुनाउँ ॥
 सीख गुरु या बिचि जो धरहीं । जैसी विधि तुम हम सों करहीं ॥

तन मन शीस न्यौछावर डारै । तब गुरु शिष्य हृदय संचारै ॥
 रंचक कपट दियेमहँ राखे । गुरुसनेह रस कैसे चाखे ॥
 मुखसे बातें मीठी करहीं । अर्थद्रव्य मन कृत्रिम धरहीं ॥
 गुरुलोभीशिष्यलालचिजानी । परमारथ नाही पहिचानी ॥
 कैसे ताकर होय उवाग । बूढ़हि भवसागरकी धारा ॥
 साखी-युक्ति मुक्तिकी को कहे, नगकहु नाही ठोर ।

पिशाचरूप भ्रमत फिरै, बाँधे यमकी पोर ॥

चौपाई ।

धन्य भाग्य तुम हमको चीन्हा । तन मन धन न्यौछावर कीन्हा ॥
 यहि कारणमें कीन्हो नेहा । मूलशब्दसों करहु सनेहा ॥
 साखी-कहियत वचन विचारिके, तुम सुनियो चितलाय ॥
 धारज दृढता ठानिके, अमृत पिये अघाय ॥
 चौपाई ।

जब प्रभु हते मूल अस्थाना । हंस सुजन जन नहि उतपाना ॥
 सो निज ठाम लखावों तोही । धर्मदास जो पूछे मोही ॥
 तब ना हतो अग्रको मूला । तब ना हतो विदेह स्थूला ॥
 तब नहि हंस सुजन जनकीन्हाँ । तब यह हंस बास कहाँ लीन्हाँ ॥
 तब साहब समसर उपराजा । समसर अग्र कीन्ह सबसाजा ॥
 दश ग्यान्ह नाही ब्रह्मंडा । तब नहि हते लोक अरु अंडा ॥
 तब नहि अमी अमी रस छंदा । तब नहि दिवस रेन अरु चंदा ॥
 सो अब कहौ मूल नहि कन्दा । मूल विदेह नाम आनन्दा ॥
 कहेउ भेद लहेउ निज नामा । जासों पूरण है सब कामा ॥
 जैसे जलमें दिनकर ज्योती । यों घट भीतर लखिये मोती ॥
 धर्म नाम असंभव नाऊं । निरालम्ब अग्रिम है गाऊं ॥
 निरालंब आलंब ठिकाना । याविधि साहिबको पहिचाना ॥

सो में देखि तोहि समझाऊँ । यह तुम राखो हिय छिपाऊँ ॥
 वह प्रभु निरालंब बतलाई । नाम प्रभाव पुरुष लखिपाई ॥
 सार नाम जिन दिये समोई । काल जाल सब जाय बिगोई ॥
 निरालंब है अधर अकाशा । पृथ्वी पवनहि मौंहि निवासा ॥

साखी-निरालंबहि प्रभाव यह, सकल सृष्टि बिन नाम ।

अजर अमर बिनसें नहीं, बिन थूनी बिन धाम ॥

चौपाई ।

सो विधि ताको में समझाई । अविनासी या विधि प्रकटाई ॥
 बिना तत्त्व तत्त्व जो भयऊ । बिना प्रतीति भेद किमि लहेऊ ॥
 करि प्रतीति तजि अन्य उपाई । आनंद गांव अनन्द कराई ॥
 तब हंसा आनंद हो जाई । आनन्द शब्द हृदयलों लाई ॥
 जीवतही नर मुक्ति होई । अक्षर गहि निर अक्षर होई ॥
 येहि प्रताप अग्रको लहिए । स्थूल विदेह वाहिमो कहिए ॥
 निरालम्बसो भए अलंभा । शब्द सरूप सृष्टि सब थंभा ॥

साखी-निरालंबके खोजमें, सब जग परो लुभाइ ।

जब सतगुरु दाया करै, तबही परै लखाइ ॥

चौपाई ।

धर्मदास जो विनती करही । चरण पकरि शिर ऊपर धरही ॥
 तुम समर्थ में दास तुम्हारा । चरण प्रसाद भयो बिस्तारा ॥
 एक विवेक कही समझाई । वचन सुधा मुनि तृषा बुझाई ॥
 अब साहिव कहिए व्यवहारा । मृतक जीव गरुड संचारा ॥
 जेहि विधि जीवहि गरुड जियावा । सोई भेद गुरु मोहि बतावा ॥
 मूलशब्द अक्षर पहिचानी । अगमहि नाम अकाशे जानी ॥
 सो कहिए प्रभु भेद बखानी । बाल जिवाइ गरुड नहि आनी ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास बृझा व्यवहारा । यहै भेद अति कठिन अपारा ॥
 योगी जंगम रहे लखाई । याहि भेदको अंत न पाई ॥
 कलियुग महामदको अवतार । तिनसो होये म्लच्छ अपारा ॥
 वेद अथर्वनको मत लावहि । मानस मारिसाख बतलावहि ॥
 पीर पैगम्बर अजमत धारी । जीव दया नहि कीन्ह विचारी ॥
 अनकट वचन कह दिस गता । मात पिता पूछ नहि बाता ॥
 येहि वचन सुनि हृदय लगावो । समझि बूझिके गुप्त छिपावो ॥
 आपा नाडि आप सब कीन्हा । आत्म संधि कृष्ण कहि दीन्हा ॥
 अंबुजते अमृतहो आवा । अंबुजते जल पृथ्वी आवा ॥
 साखी--कहे कबीर विचारिके, धर्मदास सुनि लेव ।

हृद हो अमृत पीजियो, सब जीवन कहि देव ॥

स्मरण ।

ॐ अकार आवा सो साग । अजर अनीत अचिन्त व्यवहार ॥
 अजर अहो अती है उज्ज्वल । स्थित उत्पन्न वर्हा है निर्मल ॥
 अर्ध ऊर्ध याहिमें सही । बर्कत फर्क याहिमें कही ॥
 भयो अलखते सब संसारा । लयो अर्ध ऊर्ध पर भाग ॥
 साखी--अर्ध ऊर्ध आलेख सब, में में रहे समाय ।

कहे कबीर धर्मदाससों, सोहि रहे घर आय ॥

बोल अडोल आप जो कहेउ । दीप अदीप एक नहि रहेउ ॥
 अष्ट मुष्टि कहि पंच प्रभाउ । ये सब वाहीसो होइ आउ ॥
 कस नहि जीव मुक्तिको लहेउ । एक घरीक बोल जो कहेउ ॥
 करि प्रणाम देहमें आवा । अजर अमर अटल घर पावा ॥
 पुरुष सँयोग जो सेय बिछावा । अर्ध ऊर्ध ऊपर सच पावा ॥
 रसना पाय अमृत जब चाषे । तब उठि जीव वचनमुख भाषे ॥

साखी—यह गुन ज्ञानस्थितहि के, जीव जीव तन आव ॥

कहे कवीर धर्मदाससों, अर्ध उध संभाय ॥

सम्पूर्ण स्मरण—चौपाई ।

भाषों जो प्रभु अमृत कीन्हों । जेहि विधि अमृत सिरजे लीन्हों ॥
 धर्मदास यह कहों बुझाई । जेहि विधि अमृत कीन्ह बनाई ॥
 आपहि आप अधर जो आवा । अमृत वही कूर्म जो पावा ॥
 कूर्म जाय गति जेहि बैठा । धर्म सहितसों कीन्हों पैठा ॥
 सहज निरंजन भेद बतावा । भाषो भेद बरण सब पावा ॥
 धर्मराय कूर्महिपर आए । कूर्मनाथ जहां अग्र गहाए ॥
 मस्तक काटिय पेट विदारा । कूर्म दुखित भए शक्ति निसारा ॥
 प्रकट समुद्र तभीसों भयेउ । जबही पेट विदारि लयेउ ॥
 अमृत धर्मराय कछु पावा । कछु गिरपरा समुद्र समावा ॥
 अमृत विष्णु तबही जो लीन्हा । जबही मथन समुद्रहि कीन्हा ॥
 अमृत तबहि निरंजन पावा । सोई अग्र सुकृतहि समावा ॥
 धर्मशील काटो है तबही । विषम सरोवर उपजो जबही ॥
 धर्मराय अमृत जो पावा । तेहि कारणसों अलख कहावा ॥
 अग्र शीस कूर्मके पाई । ब्रह्मा विष्णु तबै उपजाई ॥
 जीव जंतु पृथ्वी उपजावा । यह बल विष्णु राजसों पावा ॥
 इंद्र जाय तब सेवा करहीं । भांति भांतिके सुख अनुसरहीं ॥
 तृप्त कीन्ह देवन सब अंगा । विष्णु दया कीन्ही परसंगा ॥

साखी—सूक्ष्म इंद्र दया करी, इंद्र भाजि विस्तार ।

ब्रह्मा विष्णु महेश मिलि, कीन्हों सकल पसार ॥

चौपाई ।

धर्मदास जो बिनती लावा । गरुड़ अमृत केहि कारण पावा ॥

सतगुरु वचन ।

पूर्व कथा अब कहों बखानी । धर्मदास ली जो बिलछानी ॥

नागहि लोक इंद्र जो गयऊ । सुधा हेतु कारज तेहि ठयऊ ॥
 डारेउ नाग फाँसते तबही । कौन छुड़ावे याते अबही ॥
 नागदेवके मात रहीया । गरुड मातसोंही छल करिया ॥
 माथे लीन्ह गरुडकी जीती । छलमों भई दयाकी रीती ॥
 गरुड मात कहि वचन सुनाई । दासी भाव कहां तुम पाई ॥
 तब उठि माता वचन उचारा । सुनो पुत्र एक भद इमाग ॥
 नाग मात मोहि वचन हरावा । यातें दासी भाव रहावा ॥
 पीतवर्ण शशिहम कहि सोई । श्याम वर्ण उन करो विलोई ॥
 यहछल जानि पग नहि मोही । सुनो तात समझावों तोही ॥
 कोपि गरुड तब गए पताला । नागलोक जहाँ विषकी ज्वाला ॥
 देखत गरुड नाग सब भागे । मातासो छल कीन्ह अभागे ॥
 माँगो सो हम तुम कह देही । हम कहँ त्रास देव जिन एही ॥
 गरुड अहिन तब वचन उचारा । अमृतकुण्ड देव सब धारा ॥
 नाग आइ तब कीन्ह निहोरी । गरुड इंद्रकी बंधन छोरी ॥
 अमृत लेइ दर्शनको गयऊ । नाग गरुड पहुँचावत भयऊ ॥
 गरुड मात नाग जब देखा । दासहि भाव तजब तुम रेखा ॥
 अमृत पाइ गरुड बरियाना । तब छल इंद्र गरुडसों ठाना ॥
 गरुड महाबल सुख लहलीन्हां । बोई बंबूर अमृत किमि चीन्हां ॥
 ज्यों मलयागिरि निकटरहावा । तास्वरूप काहु नहि पावा ॥
 कूर्म उदरसे सो चलि आवा । सुधा समुद्र मथे तब पावा ॥
 गुरु द्रोहसों जन्म बिगोई । नाम पाइ अस्थिर नहि होई ॥
 चंचरीक चंचल है बहई । मलयागिरिकी सुगंध न लहई ॥
 मलयागिरिको यही प्रकाशू । विष नहि बेधे वास सुवासू ॥

साखी-मलयागिरिके वाससे, सब द्रुम होइ सुवास ।

बासन कबहुँ बेधही, सदा रहत है पास ॥

तबहि सुकृत बिनवे करजोरी । कृपासिंधु सुनि बिनती मोरी ॥
 प्रथम तत्त्व प्रभु भाषव तुमहीं । सो सब बूझ परैगी हमहीं ॥
 पाँच प्रकट गुप्त हैं पाचा । प्रकट समझि लीन्हें हम साँचा ॥
 पाँच गुप्तको कहिय लेखा । पाँच प्रकट ये सब हम देखा ॥
 पृथ्वि तेज जल पवन अकाशा । सो प्रभु मोहि कहो परकाशा ॥
 जिहि विधि ए प्रभु प्रकटे आई । सो प्रभु भाव कहेउ समझाई ॥

सतगुरु वचन ।

धर्मदास तुम जो कछु बूझा । सो सब भिन्न २ हम सूझा ॥
 पृथ्वी गही गुप्तके नेहा । बद्धि प्रकट हुये शब्द सनेहा ॥
 पृथ्वी अंग वैराटहि जानी । पाँच पताल शीस अनुमानी ॥
 इच्छा सुरति शक्ति उपजाई । वैराट रूपमें जाय मिलाई ॥
 अलख निरंजन यासों कहिये । यही ख्याल अविगतको लहिये ॥
 मन माया जव एके भयऊ । सकल सृष्टि उत्पन्ने लयऊ ॥
 साखी-जब दोई एके भये, भयो लीन मन टौर ।

नाभिकमल ब्रह्मा भए, सब रचनाको मौर ॥

चौपाई ।

धर्मदास अब कहों बखानी । तुम हिगदै कीजो बिलछानी ॥
 पाँच तत्त्व जे गुप्त गहावा । सो सब भेद तोहि समझावा ॥
 पाँचहि अमी पुरुषने कीन्हां । पाँच तत्त्व ताही सो चीन्हां ॥
 अचल अमी जो अकाश बखानी । शब्द अमी वायू उत्पानी ॥
 अजर अमी सो तेज पसाग । अकड़ अमी जलतत्त्व सम्राग ॥
 रंग अमी सो पृथ्वी भयऊ । रचना सब याही पय ठयऊ ॥
 पाँचों अमृत तहँवा छाजे । पाँच तत्त्व तामों उपगजे ॥
 पाँच तत्त्व सों देह सँवारी । तानों गुण तामें अनुसारी ॥

देही गति काह नहि पावा । देह धरै यम काल मतावा ॥
 आत्मरूप रंग जिन जाना । प्रफुलित होय कमल विकसाना ॥
 हर्षित भयउ बुन्द जो ढाग । परै अगाध सिंधु मझधारा ॥
 परतहि बुंद रंग सब छाजा । जलतरंग जल रंग विगजा ॥

साखी—यह गुण ज्ञानस्थितिहिके, जलतरंग उपजाइ ।

जलमों सब जग उपजो, जलधौं कहा समाइ ॥

चौपाई ।

नाम तत्त्वजल तत्त्वहि कीन्हा । अस्तुति जलहि रंगकर लीन्हा ॥
 जल उपरहि कूर्म उपगजा । कूर्मपीठि वागह विगजा ॥
 पीठ वराह शेष जो रहई । शेषहि फनपर पृथ्वी भरई ॥
 कूर्म सुरति पुरुषकी अहई । उनको अंश कूर्म इह लहई ॥
 महापुरुष आसन जहाँ आई । स्वासा शब्द पुरुष उपजाई ॥
 बहुरि तेज पुरुष परकाशा । सुरके घर हो तेज निवास ॥
 आनंद रूप लोचन जब कहें । तेज हर्षपर घट हो चहें ॥
 हरष तेज मूरय उतपानी । सो सब जगमें कीन्ह पयानी ॥
 तेज अंग मूरय कर रूपा । शीतलता शशिके मरूपा ॥
 या विधि दोइ अंश उतपानी । धनदास लीजो बिलछानी ॥
 अंग सूर्य शशि लयो बनाई । तेज हर्ष गुण उभय बताई ॥

साखी—कूर्म उदगसों प्रकट है, रहे जगतमें छाये ।

बिन मतगुरु नहि पावही, कहे कर्बार समझाय ॥

चौपाई ।

जो अज्ञान ज्ञान नहि जाना । तासों भेद न कहव सुजाना ॥
 बहे बाये मन थिर नहि जेही । सार शब्द कहा करै मनेही ॥
 स्वासासार पुरुष उपजाई । सुरहो श्वासहि समसर छाई ॥
 समसर भेद जानि नहि कोई । अग्र श्वास तेहि कहिए सोई ॥

वहे गुप्त यह प्रकट बताई । यामें फर्क न जानहु भाई ॥
 समसर पवन है सकल सुगंधा । ता बिन जगत आय सब धंधा ॥
 गंध विगंध रची यह देही । समसर पवन सुगंध सनेही ॥
 समसर अंग अग्रको आहै । समसर गहे पुरुषको लाहै ॥
 अग्ररंग बाँए उपराजा । उनसों होत रंगको साजा ॥
 रंग रेख सब उनसों होई । मृतकर रंग डार उन खोई ॥
 रंग बाँएसे हरियल कीन्हा । हरियल रंग जात सब लीन्हा ॥
 जीव जन्तु औ कीट पतङ्गा । द्रुम औ बेली सबके सङ्गा ॥
 घास पात जिव सकल बिहङ्गा । हरियर राखो सबके अङ्गा ॥

साखी-यह नहिं होतो जगतमें, मरत सकल कुम्हलाय ।

ज्ञानहि अस्थित पुरुषकी, कहै कवीर समुझाय ॥

चौपाई ।

एहि वायु हरियर जो कही । हरियर वायु तुहांसों सही ॥
 अकाशमंदिरमें कीन्ह निवासा । जेहि मंडलते उपजी खासा ॥
 याविधि उपजन भौ सब ठौरा । संसारी भेद कहीं कछु औरा ॥
 कालफंद फाँसी बड़ डारी । तासों परै न वस्तु विचारी ॥
 जब स्वासा साहँहि उठाई । मूल दीक्षा प्रथम कहाई ॥
 जब वालकको दीक्षा दीजे । बीरा देकर अस्थिर कीजे ॥
 सार नाम तब देव लखाई । जरा मरण सुस्थित घरपाई ॥
 जो निज करै नाममें बासा । जासो स्वासा नाम प्रकाशा ॥
 बिना नाम कालकी फाँसी । दीक्षा मूल यही परकाशी ॥

साखी-मूल दीक्षा संग इह, लेहु संत चित लाय ।

धन्य भाग्य वा हंसके, नाम संधि जो पाय ॥

बिना शब्द संधी बिना, काहु न पाई बाम ।

संधि नाम हंसा गहै, करै काल नहिं त्रास ॥

सत्य सुकृतकी रहनि रहि, गहे अर्जमन नाम ।
 कहे कबीर धर्मदाससों, सत्य शब्द परमान ॥
 सत्य सुकृत लों मेंडु है, ग्यान ध्यान धरधार ।
 शब्द अजानन है वही, सोई संत कबीर ॥
 अजर अमर वह पुरुष है, सत्यमान बैधि छोर ।
 कहे कबीर धर्मदाससों, थाइ शब्द शिरमोर ॥

चौपाई ।

अब में कहों अकाश बिचारा । जिहि विधि भयव तासु विस्तारा ॥
 अकाश अंड मध्य जो रहेऊ । अकाश भेद विरले जन रहेऊ ॥
 अकाश अंग सो सब निर्मावा ॥ शून्य मंदिरते नाभी आवा ॥
 पृथिव अकाशयोग अब कीन्हा ॥ शब्द हेतु काहु विरले ॥
 तालमृदंग अकाशते होई । रहित शब्द पुनि सुनी समोई ॥
 अकाशबीच असहोय गुजारा । बिना मृदंग शब्द झनकारा ॥
 अकाश पेट अकाशहि चीन्हा । सुरति सुनी आकाशहि दीन्हा ॥
 साखी—कहे कबीर अकाशगुण, बूझत विरला कोय ।

लीलारंग अकाशका, सुनियो सत्य बिलोय ॥

चौपाई ।

जो मंदिर अकाश नहि देखे । तबललि शब्द रहत अनपेखे ॥
 पाँच अकाश तबै लखि पाई । जबै मंत्र गायत्री आई ॥
 साखी—भेदाकाश गुण अधरहै, ज्यों लखि पावै कोइ ॥
 नहि अक्षर लखि आवही, पहुँचे निज घर सोइ ॥

मंत्र गायत्री ।

धर्मदास विनवे करजोरी । भाषों शब्द गायत्री डोरी ॥
 भेद गायत्री बालकको दीजे । प्रेम मुफल बालकको कीजे ॥

थापर कीर्त कैसे जाई । प्रकृति अंग मायाको भाई ॥
माया अंग अष्टांगी कीन्हौ । अष्टांगी गायत्री चीन्हौ ॥
येह शब्द हम कहो बुझाई । लीजो संतो शिरहि चढ़ाई ॥
बाग योजन बुढ़े जाइत्री । पल पल छूटे इहीठाँ गायत्री ॥
भ्रमनाको आगो यह दूटे । ब्रह्म कथौ हिरदय रस लूटे ॥
जार बार कालहिकर छीरा । करकर निर्मल अंग शरीरा ॥
बाम अमरपुर शब्द संधाना । कहै कबीर काल पछिताना ॥

सम्पूर्ण ।

न्यास ।

रक्षा प्रथम न्यास जो करई । सुर गंधर्व न्याससों डरई ॥
कालजाल निज बंदन होई । निर्मल रहै काल कहँ खोई ॥
भूतहि प्रेत वीर बताला । वायु बतास और मैताला ॥
साठ तीनसौ ऊखत कहिए । दृगन्यास कर एक न रहिए ॥

साखी—यह गुन दृग अन्यासके, कहै कबीर बखानि ॥

प्रथम रक्ष या कह पढे, वढ़ि हितचित पहिचानि ॥

चौपाई ।

दुष्टनको बंधन है येही । हंसमुक्त मन मुक्ति सनेही ॥
दृगन्यास प्रथम जो पढ़ई । तब रक्षा मन शब्दहि दृढ़ई ॥
दृगन्यास बालकको चाही । संशै अंश रहित हो ताही ॥
यही शब्द में कहों बखानी । यही भेद बिरले पहिचानी ॥

साखी—उत्तम मध्यम अधम जो, सबहि करै निर्वाह ।

दृगन्यासके येह गुण, कुशल क्षेम प्रवाह ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विनती उठि कीन्हौ । पुरुषहि भेद सकल हम चीन्हौ ॥
निश दिन चरण चित्त तब धरहू । अन्य उपाय सबे परिहरहू ॥

येहि वचन प्रभु कहो बुझाई । जाते काल दंड दुख जाई ॥
 इंदुमती कह काल सतावा । रहि सचेत शब्द लखि पावा ॥
 सो मोहि भेद बतावहु स्वामी । करहु कृपा गुरु अंतर्यामी ॥
 सद्गुरु वचन ।

धर्मदास भल पूछन कीन्हौ । सो अब भेद तोहि कहि दीन्हौ ॥
 रानी काल कीन्ह जव त्रासा । तव इम शब्द कीन्ह परकाशा ॥
 साधु संत सेवा चित धरहीं । भक्ति प्रेम बहु विधि सों करहीं ॥
 हमहिं छोड़ि नहिं जाने दूजा । कुलकरनीकी छाँड़े पूजा ॥
 तजि कुल करनि अमरपद पावा । येही सार नाम चित लावा ॥
 तोसों शब्द बिरहुली भाखी । तव कारण हिरदेमें राखी ॥
 येही शब्द लेहु शिर मानी । मनसा वाचा निश्चय जानी ॥

बिरहुली ।

आदि अन्त तब न हते बिरहुली । भूमि अकाशहु न हते बिरहुली ॥
 तब विष नहिं अवतार बिरहुली । विषकीक्यारितुमबाहिरहुली ॥
 विषका कीन्ह अहार बिरहुली । सवा लक्ष पर्वत थे बिरहुली ॥
 तहाँ विषको अवतार बिरहुली । गड़ि गड़ि शंकर बोइ बिरहुली ॥
 पार्वति डारेउ पानि बिरहुली । सो विष संतहि खाइ बिरहुली ॥
 विष माटि होय जाय बिरहुली । मउरी संशय करिया बिरहुली ॥
 आफूयों हरतार बिरहुली । सबसों शब्द निरंत बिरहुली ॥
 भागु विष पैठि पताल बिरहुली । बनहि कंद विष विकल बिरहुली ॥
 पोस्त धतूरा भोंग बिरहुली । गुरु वचन धरि बाँध बिरहुली ॥
 विष न संचरं अंग बिरहुली । उदमदविष मदराज बिरहुली ॥
 यह विष बिरलै सम्हार बिरहुली । जब नहिं स्वर्ग पताल बिरहुली ॥
 तब विष नहिं अवतार बिरहुली । दूत भूत सब भगे बिरहुली ॥
 जहां बसे साधू संग बिरहुली । भोगा कीयो तें कहां बिरहुली ॥

कहाँ ये डसवत आये विरहुली । साखी नामकी चले विरहुली ॥
 सब दुख तुरत नशाये विरहुली । नामकी कहाउत पाति विरहुली ॥
 सबहि तुच्छ कह जाय विरहुली । वचनादिके अकार विरहुली ॥
 मन विष दूर पराय विरहुली । तनसों दुरि है जाय विरहुली ॥
 शब्दसुनत विष जाय विरहुली । हरि प्रकटै संसार विरहुली ॥
 साहिब कीयो संसार विरहुली । दूत भूत सब हारि विरहुली ॥
 पहुँचे सत्य कबीर विरहुली । भई यम जिय पीर विरहुली ॥
 इन तन विष न समाय विरहुली । उत्तर रानी पाय विरहुली ॥
 उठिके आमन दीन्ह विरहुली । विरहुली दुःख नशाय विरहुली ॥
 वार वार शिरनाय विरहुली । कबीरके गुण गाय विरहुली ॥
 विरहुली संपूर्ण ।

धर्मदास वचन ।

धर्मदास फिर विनती करहीं । सतगुरु चरण शीश पर धरहीं ॥
 अब प्रभु कहिए लोक सरूपा । दीनदयाल कृपाल अनूपा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास में कहों बुझाई । विना भेद लोके नहि जाई ॥
 अंधी सुरति शब्द विन जानौ । लोक दीप कैसे पहिचानौ ॥
 शब्द पाय जब सुस्थिर होई । थान मुकाम लखै पुनि सोई ॥
 जो लखि पावै थान मुकामा । सुरति चले तब पावै नामा ॥
 विना नाम नहि ठौर ठिकाना । अंध सुरति हो रहे ठगाना ॥
 सोइंगत सब छहों बखानी । एक चित्त है गहे जु प्रानी ॥
 पुहुप दीप सब दीप निवासा । छबिस दीप रचौ तेहि पासा ॥
 कंचन दीप पाहु पर सोई । रत्न अनूप कोटि रवि मोई ॥
 तहां पुरुष पर कीर्ति विराजै । उत्पति प्रलय तेहिपर छाजै ॥
 लीलगर दीप पुरुषकी वासा । जहां पहुँचे न कालकी त्रासा ॥

कालहि गमी वहाँ नहि आवै । सहज पुरुष जहाँ बैठि रहावै ॥
 बिनती सहज कीन्ह कर जोरी । जीवन बंध वेगि प्रभु छोरी ॥
 बीज शब्दमें सोहं वीरा । यह उत्पति गुरु कहै कबीरा ॥
 यहाँ गमी कोउ नहि पावै । जहाँ लीलगर द्वीप रहावै ॥
 तहाँ सुजन जन बैठे ज्ञानी । सत्य सुकृत दोई अगवानी ॥
 अब मैं कहौ दीपकर लेखा । जाविधि रचिव रंग औ रेखा ॥
 बीज शब्दमें सोहं वीरा । ये उत्पन्न सुन धरौ शरीरा ॥
 जगमगज्योति सदा उजियारा । शब्दरूप काया कर प्यारा ॥
 शब्दहि हेत वचन है वोटा । रत्नशिला चहुँ दिशि है कोटा ॥
 लोक नाम है लोक अनन्दा । उडगन महुँ सोहत जस चन्दा ॥
 आस पास कंचनकी बारी । हीरा लाल रत्न अवतारी ॥
 कहा कहौ मंदिर कर रेखा । खम्भ कंचनके आहि विशेषा ॥
 सिंहासन अति तहाँ विराजै । कंचन जडित लाल बहु छाजै ॥
 लागै कोटि चहुँ दिश रूपा । चन्द प्रकाश ही जान स्वरूपा ॥
 तेतिस कोटि सूर्यकी पाँती । बीच बीच देखो अस क्रांती ॥
 तापर सोहत अधर अटारी । हीरा मोती बहुत सँवारी ॥
 ता ऊपर शोभित कस रेखा । कोटि रत्न दमकत जनु लेखा ॥
 मोतिक चौक पूर जनु डारी । शोभित चौक कलित विस्तारी ॥
 ता ऊपर जु रंग अस सोहै । मानहु रत्न मणी मय होवै ॥
 जगर मगर सोहै उजियारी । उपमा बरन सके को प्यारी ॥
 बहुत हि उपमा को कह दीजे । कोटिन भाग सूर्य शशि कीजे ॥
 पालंगरूप काकहिके बखानी । हीरा रत्न बीच बिच खानी ॥
 सेजरूप शोभित शशि खानी । चन्द्र सूर्यको ज्योति छिपानी ॥
 चन्द्र सूर्य नाही वह तारा । नाहि रत्न कञ्चन महि भारा ॥

साखी-ज्ञानस्थितिके येह गुण, पुरुष रूप उजियार ।

पलमें इच्छाते भए, लोक दीप विस्तार ॥

चौपाई ।

तहाँ पुरुषने सेज बिछाई । चन्द्र सूर्य जहाँ रहे लजाई ॥
 तिलभर सिज्याको परवाना । सोइ सुरति अभयपद ज्ञाना ॥
 तहवाँ पुरुष कहिं आनन्दा । जिनसों अमी भए सब छम्दा ॥
 तहाको बरन कहे को भाई । लक्ष जीवसों नाहिं कहाई ॥
 अमर चीर सोइ अस अंगा । सूर्यमणीसों अधिक सुरंगा ॥
 यही व्रत हंसनको भाई । पुरुष रूपको कहे बनाई ॥
 शोभा कहो दोऊ कर पानी । चन्द्र सूर्यकी ज्योति छिपानी ॥
 सर्व वरणको कहो बुझाई । उभै सूर्य मानो उमगाई ॥
 दंत सुरंग शोभित अति भारी । मानो मणि बत्तीस विचारी ॥
 भालरूप का कहों बखानी । चद्र किरण मानो लपटानी ॥
 इकर चरित वरणि नहिं जाई । मानहु सुकृत सत्य उमगाई ॥
 अधर नासिका सोइत कैसा । उभय हंस बिहरत है जैसा ॥

साखी-वरणन सब का याहको, मोसों कहो न जाय ।

उपमा केहिको दीजिये, पटतरनाहिं दिखाय ॥

सूर्य होय समुद्र भर, भू अकाश भरि चंद ।

तबहु न पटतर पाइये, पुरुष वदन आनंद ॥

राई भर वह वस्तु है, अधराई अस्थूल ।

लहर लहर घटमें करै, वही पुरुष निजमूल ॥

इह गुण ज्ञानस्थितिहिके, कहे कबीर समुझाइ ।

पुरुष ध्यान जबही करै, सब दुख जाय पराइ ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास तब बिनती ठाना । दीन्हों मोहि मुक्ति फलदाना ॥

सादेब कहिए मोहि बखानी । सत्ताइस दीप कहो बिलछानी ॥

दीपनको कहिये मोहि लेखा । जामें परचे शब्द विवेका ॥

धर्मदास जो पूछिब आई । सो अब कथा कहो समुझाइ ॥
 पुहुप द्वीप जहाँ पुरुष रहाई । अलोप द्वीप तासों कहि भाई ॥
 आस पाम है छविष दीपा । तहाँ पुरुष रहै अधर समीपा ॥
 तीन दीपनको नाम बखानों । धर्मदाम मनमों बिलछानों ॥
 अजर द्वीप पुरुषके पासा । कुसुम द्वीप मतगुरु निवासा ॥
 अमरद्वीप सुजन जन जाना । सुमन द्वीप अब कहों बखाना ॥
 सहस नेत्र द्वीप सुनि लीजे । अलोक द्वीप सुनिके चितदीजे ॥
 कंचन द्वीप बखानों आई । कंचन द्वीप सुनो चितलाई ॥
 सुरजन द्वीप कहों सम्भाग । अजर द्वीप निर्मल उजियारा ॥
 हेत द्वीप सुनियो चितलाई । लवंग द्वीप द्वीप अति छाई ॥
 अवहि निरक्षर कहिये द्वीपा । कमल द्वीप तहाँ पुरुष समीपा ॥
 अंबु द्वीप बहुत उजियारा । सुरति द्वीप अब कहों पभारा ॥
 भिरत द्वीप सोही जन जानै । निग्रह द्वीप करै पहिचानै ॥
 श्वेतद्वीप समझो हो ज्ञानी । निश्चित द्वीपमों जाय समानी ॥
 सुस्थिर द्वीप चित्त जो राखा । कारति द्वीपकरे अभिलाषा ॥
 अकृत द्वीप आहि उजियाग । अक्ष द्वीप मह शब्द पसारा ॥
 द्वीपचंद्र मन कहों अनन्दा । पतंग द्वीप उमगे रवि चन्दा ॥
 कुरञ्च द्वीप धर्मनि लघु जानी । सताइस द्वीपके नाम बखानी ॥
 साखी-इतने द्वीपक गुप्त हैं, कोइ न जानत नांव ।

कहैं कबीर धर्म दाससों, सोई ठांव लखाव ॥

चौपाई ।

धर्मदास तुम सबै बिचाग । सार शब्द नहिं अनुसारा ॥
 जब लगि सार शब्द नहिं होई । तौ जिय केता जन्म बिगोई ॥
 काम कपाल भोज बसु नारी । सो साधू जिन नाम सँभारी ॥

इकोत्तरसे पुरुष तर जाई । इहि विधि रहन गहे चितलाई ॥
 नारि पराई चित मन देही । जन्म सात कुष्टी कर लेही ॥
 नारि पराई अंग छुवावै । कशमल लगै तत्त्व घटि जावै ॥
 लाख वर्ष रहै भूतकी खानी । भुगते नर्क घोर सो प्रानी ॥
 बिना शब्द जो भुगवहि नारी । तो सब परे कालकी वारी ॥
 बिना शब्द निरञ्जन लीन्हौ । ताते पुरुष माथ पुनि छीन्हौ ॥
 नर्कहिनी कहा बात जु कहिये । सुर नर सबै काम वश रहिये ॥
 धमदास सुनि लीजे हमसों । उत्पति सकल कही हम तुमसों ॥
 राजा युग धिर पास में रहिऊ । बालकरूप तहां पुनि रहिऊ ॥
 घन कुमार तासकी रानी । प्रीतभाव बहु सेवा ठानी ॥
 पुत्र भाव उन हमकह जाना । कपट भाव नहिं तजौ निदाना ॥
 दान पुण्य वे बहुतहि करहीं । राज गुमान गर्व अति धरहीं ॥
 शब्द हमार नहीं उन चीन्हौ । कुंजर देह जायसों लीन्हौ ॥
 कनक सिंह तिनके सुत कहिये । राज तिलक उनके शिर रहिये ॥
 भाग्यवन्त भयेऊ बड़ राजा । पिता पीड करही सब साजा ॥
 बहुतक दिवसतहां चलि गयऊ । एक दिवस कौतुक अस भयऊ ॥
 आधी रात बीति गइ जबही । राजा स्वप्न दीन्ह पुनि तब ही ॥
 कुंजर देह धरै तब आवा । कनक सिंह कहैं स्वप्न जनावा ॥
 अहो पुत्र सुनु बचन हमारा । यहि घर आय तू सिरजनहारा ॥
 भ्रातारूप उन्हें जिनि जानौ । सतगुरु आप लेव परमानौ ॥
 जब तुम भक्ति करो चितलाई । कुंजर देह छूटि मम जाई ॥
 चटपट परत राति नियरानी । मीन करत जो पानी पानी ॥
 प्रात आइ पद शीश लगाऊँ । हम नहिं चीन्ह तुम्हारा भाऊँ ॥
 चूक परी हमसे गुरु साई । मरम तुम्हार चीन्ह नहिं पाई ॥
 भ्रातारूप हम तुम कह जाना । तुम तो ब्रह्म आहु निरवाना ॥

पिता इमार कुंजरहि भयऊ । आधी रात खबर मोहि दयऊ ॥
 क्षमा अपराध कीजिये स्वामी । कृपा सिधु हो अंतरयामी ॥
 साहब दया करी अति भारी । सकल जीव हैं शरण तुम्हारी ॥
 दाया करि दीज वर सोई । जाते आवागमन न होई ॥
 जिहिमो होय मोर निस्तारी । सो प्रभु करिदों तब बलिहारी ॥
 तब हम उनपर दाया कीन्दा । संधिक नाम उनहि कह दीन्दा ॥
 विधिपर भक्त कीन्ह चितलाई । धनकर मनकर तनकर भाई ॥
 सतरहसै रानी परवाना । कर्मनि काहु कहा नहि माना ॥
 कहक उहागिल हती जो रानी । सो उठि चली शब्द पहिचानी ॥
 सकल रूप कर चली सिंगारा । भक्ति हेत कारन पग धारा ॥
 लीलावती नाम तिहि केरा । सो हम जीवन कीन्ह उबेरा ॥
 सोरह रानी सत्रहों राजा । पहुँचे लोकहि पुरुष समाजा ॥
 सोई कथा कुंजर मों आई । धर्मदास परखो चित लाई ॥

साखी—यह गुन ज्ञान स्थितिदिके, सेव शब्द निजसार ।

या विधि हंस करनी करै, उतरै भवजल पार ॥

सजेको शब्द ।

साखी—अक्षय नामके सेजपर, हंसा पारस दीन्ह ।

कालमें यम लूटिके, हंस आपन कर लीन्ह ॥

अक्षय सुख सेज आदी बानी । जापर हंसा पारस आनी ॥

साखी—जो हंसा पारस परसि, कहे कबीर सत बोल ।

ताकहैं चोर डहके नहीं, युग २ आदि अमोल ॥

ते हंसागये अमर लोककहैं, अक्षय अंक हमपारसलीन्ह ।

कहै कबीर सत लोक बैठिकर, जीमें चीन्होती दीन्ह ॥

धर्मदास बचन—चौपाई ।

धर्मदास चित सेवा ठाने । दोइ कर जोरि चरण लपटाने ॥

कठिन भेद साहेब तुम कहेऊ । जीवन मर्म न काहू लहेऊ ॥
 ब्रह्मा विष्णु शंकर मिलि भाई । अलख निरंजन ध्यान लगाई ॥
 सुर नर मुनिकी कौन चलावै । पचि २ मरै पार नहिं पावै ॥
 तवन भेद साहेब मोहि दीन्हौ । हंस उबारि लोक कहँ लीन्हौ ॥
 अब प्रभु मोहि कृतारथ कीजै । लोक दिखाय दरस प्रभु दीज ॥
 यही देहसों लोक दिखावो । हे दयाल मम तृषा बुझावो ॥
 चित चकोर तब होइ अनंदा । दिखे अघाइ लोक सुठि चंदा ॥

साखी-धर्मदास विनती करै, साहब सुनो चितलाय ।

जबही मम संतोष होइ, पूरुष दर्श दिखाइ ॥

चौपाई ।

सद्गुरु वचन ।

तब साहेब कहि बचन प्रमाना । धर्मदास तुम मन पतियाना ॥
 तुम जग पंथ चलावहु जाई । हमकह चिह्न पुरुषकह पाई ॥
 हमहि पुरुष कछु अंतर नाहीं । सुरती छाया संग रहाहीं ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास न्योछावर कीन्हौ । भये कृतारथ दर्शन दीन्हौ ॥
 अब साहब मोहि लोक दिखाऊ । तुमहि छांड़ि दूजा नहिं भाऊ ॥
 बिन देखे सुस्थिर नहिं होई । कृपा करहु निज राखो गोई ॥
 जैसे कृपण द्रव्यकी आसा । बिन पाए बहु होवै त्रासा ॥
 दरश करत तन तपत बुझाई । जैसे रंक महानिधि पाई ॥
 बिन देखे व्याकुलचित भारी । पुत्र मरे जिमि मात दुखारी ॥
 दरश विना नाहीं चितलागा । हे प्रभु मोकहँ करहु सुभागा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । अब तुम बचन सुनौ टकसारा ॥
 काया अवधि पुरी जब आही । तब लेजाव पुरुषके पाही ॥

सुरति शब्द डोगी दृढ धरहू । छूटै देह तस तब करहू ॥
 तब लगि पंथ चलावहु जाई । दृढता मानि करो गुरुवाई ॥
 मिथ्या वचन तुमहिमों करिहे । यमकी डगरि जाय सो परिहे ॥
 धर्मदास वचन ।

सृष्टिन होइ चरण चित लागे । जल बिन मीन प्राण जिमित्यागे ॥
 बिन देखे नहि होय अनन्दा । चिडिया व्याकुल है अति फन्दा ॥
 तुम माह्व अस वचन उचारा । कंप्यो जीव त्रास भवभारा ॥
 हम दर्शन बिनु ते अति चोरा । तुम प्रसाद हम पाइत वोरा ॥
 अंतर्ग्यान भए प्रभु जबहीं । सात दिवस बीते पुनि तबहीं ॥
 सात दिवस लग अन्न न पाया । कबीर कबीर ध्यान मन लाया ॥
 सद्गुरु दया करी चित लाई । कच्छ देशते तब चलि आई ॥
 कच्छ दश जब कीन्ह पयाना । अलीदास धोवी पहिचाना ॥
 नाम पान ता कहैं समुझाई । धर्मदास कह आन जगाई ॥
 छोड़हु हठ चित शब्द विचारों । पंथ चलावहु हंस उवारों ॥
 जीवन अपनी बाँह चलावो । दे परवान हंस मुक्तावो ॥
 तुम सब हंसनको सरदारा । जीव उवारि जाय दरबारा ॥
 देही सहित जान तुम चाहौ । देह धरै कैसे निर्बाहौ ॥
 लोक बैठि तब करिहौं राजी । काग कालकी टोरहु बाजी ॥
 अपनी संशय तुम मत धरहू । जीव उबारनकी सुधि करहू ॥
 साखी-देह धरेका यह गुण, देह सहित नहि जाव ।

सुखसागर तबहीं मिलै, सुरति शब्द लौलाव ॥

चौपाई ।

धर्मदास उठि बिनती कीन्हां । नामसंधि साहब मोहि दीन्हां ॥
 लोक दीपकी सुनी बडाई । ताते दरश परश चित लाई ॥
 जब लगि नाहीं देखौ नैना । तब लगि नहि पतियाहुँ बैना ॥

अतर ध्यान बहुरि प्रभु भयऊ । धर्मदास बिलखत मन भयऊ ॥
 रुदन करत फिरै बिलखाता । कहुँ ना देखे साहब गाता ॥
 मोहि अपराधी कस प्रभु छाँड़ा । विरह ज्वाल जरही मन भाँड़ा ॥
 हौं अपराधि करम कर हीना । साहेब तरस परै नहिं चीन्हा ॥
 बिन देखे नहिं जियत न आऊँ । गुरुचरणामृत बिन पछिताऊँ ॥
 अपना दास दास प्रभु कीन्हां । अग्रिम पदारथ हम कह दीन्हां ॥
 अब साहेब मोहि दर्शन देहू । तुम बिन कासो करब सनेहू ॥
 दिवस आठ अन्नहि बिन बीता । बिना कबीर जीव नहिं जीता ॥
 या विधि बारह दिन हो गयहू । तब साहब फिर दर्शन दियहू ॥
 साखी-सजिव भये निर्जीवते, अति अनन्द उर बाढ़ि ।
 धर्मदास मन हर्ष भा, सुख अनन्द हिय गाढ़ि ॥

चौपाई ।

धर्मदास बिनती तब लाई । इतने दिवस दर्श बिन जाई ॥
 हम तो भ्रमर कमलके बासी । जल बिन मीन मूरतिज्योंप्यासी ॥
 सद्गुरु वचन ।

तब साहब अस भाखब बैना । अब तुम देखो अपने नैना ॥
 देखहु धर्म निरूप हमारा । हमही छाँड़ और चित धारा ॥
 हिरिणिरूप धरो प्रभु तबहीं । कोटिन भानु छिपाने जबहीं ॥
 येहि रूप है आदि हमारा । हठ निग्रह जिन करब बिचारा ॥
 जब तुम इतना कीन्ह उपासा । तब यह दरस पाइ हम पासा ॥
 धर्मदास वचन ।

भये कृतार्थ दर्शन लीन्हां । धर्मदास न्यौछावर कीन्हां ॥
 बहुरि दास उठि पायन परही । चरण टेक बिनती अनुसरही ॥
 जबसे पावव नाम तुम्हारा । तबसे सुनब लोक व्यवहारा ॥
 अब मनसों अभिलाखा येही । सोक दिखावहु पुरुष विदेही ॥

मो कह लेहि चलो प्रभु तहवां । सत्य लोक पुरुषही जहवां ॥
 बिन परिचय नहिं मन पतियाई । बिन दर्शन नहिं सुरति दृढ़ाई ॥
 तुम प्रसाद पाइव में भेदा । अब परसौ चित अमृत केदा ॥
 सत्यलोक परसौ उजियारी । मैं अब बलि २ जाऊँ तिहारी ॥

साखी--यम बंधन सब काटिकै, हंस लगावहु तीर ।

धन्य भाग्य वा हंसके, जो कहि नाम कबीर ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

तब साहब चित पाया आई । चलहुँ वेग में दर्श दिखाई ॥
 प्रथमहि करौं नासिका बारी । फिर रक्षा मन है रखवारी ॥
 पैठै नाहीं काल शरीरा । बहुरि कठिन होवे तब पीगा ॥
 जब तुम करहु अग्र सनेहा । शब्द संघिसौं गखो नेहा ॥
 उन मुन कर पवनहि अवराधौ । उलटे ते सुलटा करि साथौ ॥
 सोहं सोहं होइ सवारा । छोडहु देह चलो दरबारा ॥
 चले जो हंस पवनके तेजा । पहुँचे निमिष मांह जहां सेजा ॥
 पलंग साठ राह हम कीन्हां । साहिब खैंचि पलकमों लीन्हां ॥
 राह माह एक नाचहि दूता । शब्द बान माग्य अजगूता ॥
 छिनमें साहब लैगए तहँवा । पुहुप दीप पुरुष रह जहँवा ॥
 सुरजन पीप जाइ भ ठाढ़े । देखत दरस हरष अति बाढ़े ॥
 धर्मदास सत बिनती कीन्हीं । साहब सुरति घटहिमों चीन्हीं ॥
 लेकर सुरति चले पुनि तहां । हंस मुजन बैठे जहां ॥
 करी प्रणाम दण्डवत कीन्हां । हंसन कुशल पूछि सब लीन्हां ॥
 केहि विधि तुम रक्षा मन आयहु । कौन शब्दसों अमृत पायहु ॥
 यमको जोर पहुँचत है प्रचण्डा । कैसे कहि आये नव खण्डा ॥
 कौन प्रसाद पाय तुम भाई । कौन वस्तु बल इहवां आई ॥
 पिछली सुरति कछु तुम आनौ । रक्षा हंस आप कह जानौ ॥

धर्मदास तब वचन प्रकाशा । आये इह कबीरकी आशा ॥
नाम संधि उन मोहि दृढाई । तिहि प्रसाद सेवा तुम पाई ॥
आरतीकर पगवाना पावा । काल फाँस सबहीय नशावा ॥
सुरति निरति भूल गये जब ही । भवसागरमाँ ठाढे तब ही ॥

साखी-लोक वेद सब भूलिहू, भूला आपनु भाव ।

बलिहारी सतगुरुनकी, जो ल्याये इहि ठाव ॥

चौपाई ।

तबहि सुजन जन पूछी बाता । कहिब कहा है हमरे भ्राता ॥
तुमरे दीप माँहि वे ठाढे । हम पूरन उनहीके बाढे ॥
तब सुरजन जन आये तहँवा । आइ कबीर बैठे हैं जहँवा ॥
चरण लगाइ अंकमहँ लीन्हां । भले गुसाँई दर्शन दीन्हां ॥
सिंहासन साहब बैठारी । सुरजन हंस विराजे भारी ॥
आज्ञा साहब दीन्ही जबही । धर्मदास ठाढे भये तब ही ॥
पुरुषहि तबहि वचन उचारा । सुकृत अंश लावो सठिहारा ॥
आरति साजि हंस सब आये । चलिऐ सुकृत पुरुष बुलाये ॥
तब सुकृत चित आये तहँवा । पुहुपदीप पुरुष रहि जहँवा ॥
पुहुपदीप नहि बरनो जाई । जगमगज्योति सदा अधिकाई ॥
दामिनि दमक होय अति भारी । कोटिन भानु जाय तहाँ वारी ॥
हंस जाय तहां करै अनन्दा । कालजाल व्यापै नहि फन्दा ॥
पंख बेहु नभचर तहां फिरही । अगिन बेहुते दीपक जरही ॥
बिन करताल मृदंग जो बाजे । चित्र विचित्र बिन कर छाजे ॥
बीना सुर तहाँ शब्द पुकारा । बीना श्रवण सुनत झनकारा ॥
बिना नालके कमल अनूपा । तामध्ये है पुरुष स्वरूपा ॥
करतहि दरश हरष उर आनी । सतगुरुवचन सत्य कर मानी ॥

साखी-अति अनंद उर ऊपजो, बाजत अनहद तूर ।

हीरा लाल मणि जग मंगै, अमृत शोभा भरपूर ॥

चौपाई ।

धर्मदास मन भये अनन्दा । जिमिरविदरश फूलि अरविन्दा ॥
 शोभा दरश हरष अति भाऊ । उभय सुरखगतिवरणि न जाऊ ॥
 तब सुरजन जन जाइ जनादा । साहेव धर्मदास यह आवा ॥
 इच्छा अधिक करै दर्शनको । पुरुष चरण द्वियमो परसनको ॥
 ये दोइ रूप तुमहि उतपानी । सद्गुरु सुकृतै नाम बखानी ॥
 तब ही पुरुष वचन फरमाया । सुरजन हंस जब बुलवाया ॥
 लेहु बेगि सुकृत तुम अंशा । पुरुष दरश करीव निःशंसा ॥
 दंडवत अष्टांगहि कीन्हौ । धर्मदास आगे पग दीन्हौ ॥
 पायर दीप ठाढ़ भै जब ही । अमृतकला देखत भै तब ही ॥
 पर धर्मदास हि मुरझाई । देखि रूप अब मति अधिकाई ॥
 कोटिन कला सूर्य औ चन्दा । हीरा रतन गिनै को गन्दा ॥
 जगमगज्योति अधिक तहां राजे । चितवनदृष्टि डगत गुनराजे ॥
 दृग संपुट अंबुज सम आही । दरशहरशछविद्वियहि अघाही ॥
 आनन्दरूप मूरछा आई । तब सुरजन तन कीन्ह उठाई ॥
 सुचित चित्त होऊ धर्मदासा । आभारूप करि शब्द निवासा ॥
 उठिकर बाह निछावर करही । शीश नवाय चरण रज धरही ॥
 दंड प्रणाम कीन्ह बहुभांती । सीप अघाह पाइ जिमि स्वांती ॥
 तबहि पुरुष अस आसन दीन्हौ । शब्दसहाय हमही तुम चीन्हौ ॥
 तब सुरजन जन बचन उचारा । सुकृत अंश कीन्ह दीदारा ॥
 पुरुष दीन सिंहासन टारी । हंसहिरम्बर बैठो झारी ॥
 पुरुष तबहि यह वचन उचारा । केहिके अंग आहि दरबारा ॥
 धर्मदास कैसे तुम आये । को बहियां जिनधरि पहुचाये ॥
 काहेके बल कालहि जीता । कौन शब्दसे राखब प्रीता ॥
 तब सुकृत बिनती अनुसारी । साहब बचन प्रीति उर धारी ॥

ज्ञानी अंश शब्द मोहि दीन्हा । उनकी बाँह गौन हम कीन्हाँ ॥
करता देन छेकि जब बाटा । शब्द बाँह श्रोता कह काटा ॥
कालहि जीत अंशले आवा । उनकी बाँह दरस हम पावा ॥
सुरजन अंश वचन उच्चार । मुकूतघटमें कवि सम्हारा ॥
देखहुँ लोकहि दृष्टि पसारी । ज्ञानी अंश कहां अनुसारी ॥
कौन दीप कहवाँ अस्थाना । कौन रूप ज्ञानी कर जाना ॥
धर्मदास घट कीन्ह विचारा । पुरुष वचन दृष्टि उजियारा ॥
लोक दीप देखो सब ठावा । ज्ञानी अंश नजर नहिं आवा ॥
साखी-लोक दीप सब देखिया, अंश नजर नहिं आय ।

पुरुष कबीर घट एकहै, दूजा नहीं लखाय ॥

चौपाई ।

धर्मदास दुबिधा बिलगाना । पुरुष कबीर एक पहिचाना ॥
रूप रेख सब एकहि देखा । दूजा भाव अन्य नहिं लेखा ॥
धर्मदास तब चकृत भयऊ । पुरुष कबीर एकही भयऊ ॥
कीन्ह बन्दगी शीस नवाई । क्षमा अपराध कीजिये साँई ॥
तुम प्रभु आप अवर नहिं कोई । बकसहु चूकि मोर कछु होई ॥
ब्रह्म अखंडित अन्तर्यामी । कृपासिंधु प्रभु पूरण स्वामी ॥
लजावान अविगति अविनाशी । लोक दीप सब कीन्ह प्रकाशी ॥

पुरुष वचन ।

धर्मदास तोहि दाया कीन्हाँ । अविगत रूपदर्श हम दीन्हाँ ॥
ये दोइ कला भिन्न नहिं जानो । पुरुष कबीर एक पहिचानो ॥
एक रूप हम हंस उवाग । एक रूप त्रैलोक्य मझारा ॥
तुम्हरे शिर जीवनको भाग । भवसागरके तुम कड़िहारा ॥
यासे परखो दीन्ह बताई । यह रमती घट देवारि माई ॥
जो तुमरे घटते नहिं जाती । तो सब जीवन माँह समाती ॥

यह दुरमत मनमहँ जो धरही । फिरि २ भवसागरमों परही ॥
 पुरुष कबीर एक जिन जाना । हंस हमारा सोइ पहिचाना ॥
 ताके काल निकट नहिं आई । नाम कबीर कहो चितलाई ॥

साखी--अब तुम जाइव जगतमें, हंसन करो उबार ।

हंसराज तुम अंश मम, भुगवो सुखहि अपार ॥

प्रलयकालके अंतमें, जीव जन्तु सब तार ।

दरस परस सब मिलि करे, अस्थिर रूप अपार ॥

चौपाई ।

पुरुष रूपसे ज्योति निकाग । नाम कबीर देह तब धारा ॥
 धर्मदास ढिग बैठे आई । जौन रूप धरि गये लेवाई ॥
 चीन्हो सुकृत रूप हमारा । अब तुम घटमें भव उजियारा ॥
 चलहु बेगि जिनि लावहु बारा । जीवनाथ देव टकसाग ॥
 चले सुकृत तबही शिरनाई । ज्ञानी लीन्हे संग लगाई ॥
 निमिष एक नहिं लागी बारा । पहुँचे सहज शून्य मझधारा ॥
 धर्मदासकी काया जहँवां । पहुँचे ज्ञानी आये तहँवां ॥
 चारी दूत देह ढिग आवा । पैठन केर उपाय लगावा ॥
 घटमें पहिठि देह ले जाऊ । धर्मदास फिर कहँवां आऊ ॥
 साइब शब्द बानसे मारा । दूतहि मारि हंस पैठारा ॥
 धर्मदास कहा महँ जागा । रोम २ आनंद बहु पागा ॥
 गुरु कबीर कह निजकर चीन्हां । तन मन धन न्योछावर कीन्हां ॥
 बहुत अनन्द कीन्ह गृह माँहीं । चरणशरण मन लीन्ह सदाँहीं ॥

साखी--यह गुण ज्ञान स्थितहिंके, कहै कबीर विचार ।

धर्मदास दीदार करि, आए जगत मैझार ॥

चौपाई ।

धर्मदास हियमें अति हषे । गद्गद गिरा नैन जल वर्षे ॥

मम हिय तिमिर आहि अधियाग । महर पतंग कीन्ही उजियारा ॥
मन अहि तपत कबहुँ नहिँ धीर । वचन अंग शीतल मलयागीर ॥
तेहिपर मत त्रिय ताप बुझानी । अमी असन त्रिय त्रिपत अचानी ॥
पायउ दरश कृतार्थ आजू । दरसन देखेव हंस समाजू ॥
अब गुरु मोकहँ देव लखाई । पुहुप द्वीप कैसे निर्माई ॥
अंबुद्वीप कौन विधि भयऊ । धर्मगज कैसे निर्मयऊ ॥
सतगुरु वचन ।

धर्मदास पूछी भलवानी । सो सब कथा कही बिलछानी ॥
पुरुष विदेही देह निमासा । थासा सारते पुहुप प्रकाशा ॥
सत्रह शंख पंखुरी कीन्हों । ताहि मध्य वासा प्रभु लीन्हों ॥
अंबुद्वीप तबही जो कीन्हों । सहज पुत्र कह बैठक दीन्हों ॥
सवा शंखही पंखुरी गजै । जग मग शोभा तहां विगजै ॥
आठ पुत्र तहँसे उतपानी । तिनसों आठों सिद्धि बखानी ॥
जोति सखपी माया आई । ज्योति रूपके काल बनाई ॥
उतपन करै प्रलय संहारा । तउना उपजै काल अहारा ॥
सहज धर्मसों गुण परकाशा । ज्योति सखपी ज्योति निवासा ॥
धर्मगयको बल परकाशा । माया जाल जीव सब फाँसा ॥
आपुन रहियव सुनी मझारा । वहाँ बैठि सब कीन्ह पसारा ॥
पुहुप दीप आवन नहिँ पावा । जानै साहब नहिँ रदावा ॥
धर्मराय माया उपजाई । ज्योति स्वरूप जीव अरुझाई ॥

साखी-पुरुष पार नाही लहेउ, अटके ज्योतिहि मूर्ति ।

ज्योति भई है प्रकृति, प्रकृति बनी है मूर्ति ॥

चौपाई ।

इह कारण वह दीप संहारा । धर्मनि पाव वही बैठारा ॥
पुहुप दीप जब सिरजन लीन्हों । समसर पवन वास तहँ कीन्हों ॥

ज्योति ओट यह बोलन वानी । सबको जानै पुरुष निमानी ॥
 काल दुष्ट जीवन छलि राखा । ज्योतिहि ओट बचन मुख भाखा ॥
 उत्पति प्रलय याहिसों भयऊ । भूल भुलाय सबनको दयऊ ॥
 पुष्टुप दीपको सुमिरन करई । ज्योति स्वरूप नाहिं सो परई ॥
 साखी-इह गुन ज्ञानस्थितहिके, पुष्टुपदीप अनुसार ।

एहि दीप बासा करै, आवा गवन निवार ॥

चौपाई ।

पुष्टुप दीपमें समसर कीन्हाँ । समसर पवन श्वास तहाँ लीन्हाँ ॥
 अमर वासना येही आहे । इहँहि बैठि सब करी कथा है ॥
 थाह न जानत मूढ़ गवाँरा । लुब्ध ग्हेव जयमाल पसारा ॥
 पुष्टुपदीप सब दीप निवासा । जहाँ वह पारब्रह्मकर बासा ॥
 येहि शब्द तुम लेव बिचारी । पुष्टुप दीप कीन्हां बहु बारी ॥
 पुष्टुपदीप दीपनमें सारा । जो बूझे सो उतरहि पारा ॥
 साखी-येहि सुरति ले राखहु, पुष्टुप दीपके पास ।

सत्य पुरुष जहाँ आप है, अमृत सिंधु निवाम ॥

चौपाई ।

तहँको हंस करहि पैठारा । जब मिलि है सद्गुरु कड़हारा ॥
 हंस जाय पुरुषहि दरबारा । अविचलनामको करहि सम्हारा ॥
 सत्य कमलपर बैठक दीन्हा । बैठे हंस अतिहि सुख लीन्हा ॥
 सुधा अहार अमर भै काया । आदि नाम अविचल मन भाया ॥
 कोटिन कोटि दंडवत लीन्हाँ । धनि सत्य सुकृत नामजो दीन्हा ॥
 पुरुष शब्दजिनि आपु बतावा । आवा गौन रहित घर पावा ॥
 साखी-येहि गुण ज्ञान स्थितिहिके, पुष्टुप दीप निजु बास ।

कहे कबीर वह शब्द गुन, हंसा करहि विलास ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास तब सेवा ठानी । सुरति भेद पूछनको आनी ।

सो सद्गुरु मोहि कहो बखानी । जासो आदि अन्त पहिचानी ॥
जौन सुरति साहव तुम साधी । सो मोहिकहिये मिटत उपाधी ॥
जेहि सुरति प्रथम जो आहै । वही सुरति मिलि सबको थाहै ॥
बिना सुरति नहि गुरुको पाही । बिना सुरति नहि लोकै जाई ॥
सुरति होइ तब ज्ञान उचारै । सुरति होइ तब ध्यान सम्धारै ॥
सुरतिहि पैठि पवन को गहै । बिना सुरति वह प्राणी डहै ॥
सुरति होइ तब आगम जानी । भला बुग सबही पहिचानी ॥
बहिनभानजी सुरतिहिजानी । माता पुत्री सुरति बखानी ॥
मोह न नारि सुरति कहै देखौ । धर्म पाप सब सुरति बिसेखौ ॥

साखी—जो कछु है सो सुरति है, साहव दे बतलाय ।

सुरति भाव जब चीन्हि है, तब हंसा द्रव जाय ॥

सद्गुरु वचन ।

तब मतगुरु अस वचन उचार । धर्मदाम छूटव मत सागर ॥
बिना सुरति पुनि कछु अनपाई । सुरति बिहू नहि आवहि जाई ॥
सो अब तुमसों कहों बुझाई । सात सुरति सब देव लाखाई ॥
पुरुष सुरति आपहि उपगजा । विहंग सुरति प्रथमहि किय माजा ॥
बीम आठ प्रकृति जो कीन्हों । जो जनमें तस भुगते लीन्हा ॥
जैसे योग जन मनहि रहाई । तैसे बुद्धि शरीरहि सोई ॥
प्रथम कहौ अब सुरति बिचारी । पुरुष एक उत्पन किय नागि ॥
जेठी सुरति तबहि उचारी । चारहु लोक कीन्ह बिस्तारी ॥
विहंग सुरति ताहीसो कहिए । ब्रह्म सुरति मूल वह लहिए ॥
निगति सुरति ये स्थूलहि छाजा । हरषत सुरति विदेही साजा ॥
बाढी सुरति नाद गुन गहै । धीर सुरति नाद गुण गहै ॥

साखी—सुरति पुरुष अंगहि बसी, फूट अंडके भाव ।

बीजमूल गुण प्रकटहै, देखै ते सच पाव ॥

चौपाई ।

सुरति शब्द अब कहौ बखानी । धर्मदास लीजो पहिचानी ॥
 सुरति शब्द भाखिद हम तुमसे सुरति प्रसन्न होय तब हमसे ॥
 सुरतिहि माहि रच्यो संसाग । सुरति करै तब उतरै पारा ॥
 जेठौ अंश सुरति जो आही । पुरुष संग वह सदा रहाही ॥
 बिहंग सुरति पुरुष जब कीन्हौ । रचना सपत सोंप तब दीन्हौ ॥
 अबहि कहौ सुरती कर मूला । उपज्यो अग्र शब्दसो स्थूला ॥
 जबही पुरुष कीन्ह है इच्छा । तब इह प्रकट भई सब शिक्षा ॥
 सुरति शब्द पुरुषहि उपजाई । सुरति प्रसन्न लोभ रच आई ॥
 सुरति निरति सुख देह अनन्दा । मेटत सुरति सकल दुःख द्वंदा ॥
 सुरति निरति जब एके होई । तब साहेब कह देखे सोई ॥

साखी--कहै कबीर वह सुरतिते, सब कछु भयो प्रकाश ।

शब्दहि सुरति बिहंग है, लीन्ह अग्रमो बास ॥

चौपाई ।

धर्मदास सुनियो चितलाइ । घट भीतर लीजो निरताई ॥
 सुरति रूप देखो निरधारा । मन बुद्धि चित्त पवनसे न्यारा ॥
 पाँच तत्त्वकी रचना येही । इनते सुरति जो आहि विदेही ॥
 ब्रह्म अंगसे प्रकटी आई । तीनि अंग गुण कला धराई ॥
 सत्यरूपसे सुरति बखानौ । चेतन अंग निरति कहै जानौ ॥
 आनंद सदन शब्द पहिचाना । सत्य सुकृत दोइ नाम बखाना ॥
 सुरति रूप चैतन्य समाई । चैतन रहित शब्द लौ लाई ॥
 सुरति समुद्रहि मठी हुवारा । हंसा पैठि देखि निर्धारा ॥

साखी--कहै कबीरहि सुरति बल, अपने पुरुषहि देख ।

मन बुद्धि चित्त समेटि के, चेतनरूप विशेष ॥

अक्षय वृक्षकी सुरतिमें, हंसा लेहि बसेर ।

कहै कबीर लै निबडि है, जात न लागे बेर ॥

अंभु दीपकी सुरतिपर , हंस होय असवार ।
 कहै कबीर लै निबहिहौ, कोटि बसैं बटपार ॥
 गृहदान रोके नहीं, सुरति हंस लै जाय ।
 कहै कबीर यम हारियो, काल पैठि पछिताय ॥
 इह गुण ज्ञान स्थितिहिके, गहे शब्द चितलाइ ।
 कहै कबीर यम हारिया, काल बैठि पछिताय ॥

धर्मदासवचन—चौपाई ।

धर्मदास विनती अनुसारी । तूम साइब हम दास तुम्हारी ॥
 गुरु शिष्यकी रहनी कैसी । सो समुझाय कहौ गुरु तैसी ॥
 योग अयोग मोहि समुझावो । हे दयाल मम त्रिखा बुझावो ॥

सद्गुरु वचन ।

सद्गुरुवचनहि विहँसि उचारी । अगुणसगुण विच गुरु अवारी ॥
 शिष्य पूछि गुरु भए उदासा । सो गुरु उठि आय धर्मदासा ॥
 जिमि बालक रोवै बिल्लाई । मात पिता बहु बोध कराई ॥
 येयाविधि गुरु शिष्य हैं सोई । जगमें अमृत पावैं वोई ॥
 शिष्य सीप गुरु स्वाती जानो । गुरुपारस शिष्य लोह समानो ॥
 गुरु मलयागिरि शिष्य भुजंगा । गुरु पारस शीतल होय अंगा ॥
 गुरु समुद्र है शिष्य तरंगा । गुरु दीपक है शिष्य पतंगा ॥
 शिष्य चकोर गुरुशशि जानौ । गुरुविक्रमलशिष्यविकशानौ ॥
 इह सनेह शिष्य निहचै लहई । गुरुपद परस दर्श हिय गहई ॥
 जबशिष्ययाविधिध्यानविशेषा । सो वह सीख गुरु समलेखा ॥
 गुरुन गुरुनमों भेद विचारा । गुरु गुरु कहै सकल संसारा ॥
 गुरु सोई जिन शब्द लखाया । आवा गौन रहित दिखलाया ॥
 गुरुहि सजीवन शब्द लखाया । जाके बल हंसा घर आया ॥
 वा गुरुसो कछु अन्तर नाहीं । गुरु औ शिष्यमता एक आहीं ॥

साखी-गुरु शिष्य एके भए, भिन्न न कबहूँ होय ।

दुर्मति दिलसो मारिकै, सुरति शब्द चित पोय ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

धर्मदास तब विनती कीन्हौ । चरण पकरिके विनती लीन्हौ ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । केहि विधि उपजे सो कहि भेवा ॥

चारि मुक्तिको भेद बतावौ । सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावौ ॥

सद्गुरु वचन ।

सद्गुरु वचन बिहमि कर बोले । मुक्तिभेद कहूँ पगदा खोले ॥

आदिहि पुरुष निरञ्जन कीन्हौ । माया आदि ताहि कहि दीन्हौ ॥

तिहि संयोग भये त्रिय बारी । ब्रह्मा विष्णु महेश चिचारी ॥

चार मुक्तिके वे हैं राजा । पंचई मुक्ति भिन्न उपजाजा ॥

प्रथम मुक्ति सालोक बताई । मार्ग वाम ताहि कर आई ॥

दुर्जी मुक्ति समीप कहावा । निर्वाण मार्ग हो ताकहूँ पावा ॥

तीसरि मुक्ति स्वरूप बखानी । अचोर मार्गही ताकर जानै ॥

चौथी मुक्ति कहिये सायोजा । सभंग मार्ग कलमा पढ़ गेजा ॥

चारों मुक्ति निरञ्जन लीन्हौ । तिनके बसहि जीव सब कीन्हौ ॥

अब सुन पांचइ मुक्ति विचारा । धर्मदास परखो मतपारा ॥

जीवनमुक्ति दस तब लहये । मृतकदसा होय नामहिगहिये ॥

सत्य वचन मुखसो उच्चारई । नामसागर हृदये महुँ धरई ॥

नियम धर्म पटकर्म अचारा । त्रिगुण फंदसों रहै निन्यारा ॥

सुरति निरति नामसों राखै । सद्गुरु वचन सत्यकर भाखै ॥

लोभ मोहसों रह निह न्यारा । करम कोधते आप उवारा ॥

दुख सुखकी कलुसशय नाही । पाप पुण्य नाही चित माहीं ॥

अरथ द्रव्य मिथ्याकर मानै । जीवन जन्म नाम पहिचानै ॥

दया क्षमा कुल दूट कहावा । विषमें हरबन चितमें लावा ॥

सो जिव उतरहि भवजल पारा । जो यह चाल चलै निर्धारा ॥
अर्ध उर्धका करहि विचारा । सत्यनाम हृदये महँ धारा ॥
चलति कमल सुलटा जव कर्है । मनहि समेटि सुरति चितधरै ॥
समर पवन योगि कह तारै । पवन डोरि स्वात, निरवारै ॥
सोह तार घडहिमें देखे । स्वत भव गहि न बद्ध विशेषे ॥
भैरव गुफामहँ जगमग जोनी । वा घर वरपै माणिक मोती ॥
निहकामी निखानी जानी । निहकूपी निश्चिन्तहि बखानी ॥

साखी-आदि सुहंग बखानऊ. स्वर्ग पताल भरि ठौर ।

कहे कबीर धर्मदाससों, वही हंस शिरमौर ॥

चौपाई ।

सुनि कमल याजीकर छोग । सुरति करे तब देखि निहोग ॥
ऐसा सुगति निगति मन राखे । साँचे दश पुरुषके भाखे ॥
जवही दश परश पुनि होवै । जन्म जन्मके कश्मल धोवै ॥
जीवन मुक्ति होइ पुनि तबही । संधिक नाम आव पट तबही ॥
कागरूप सब चाल मिटाई । गुरुप्रनाद हंस गति पाई ॥
निर्मल जीव हंसगति भयऊ । नाम संधि हृदयेमहँ लहेऊ ॥
वैश प्रताप साँचकर चीन्हाँ । नाम सार अमृतरस लीन्हाँ ॥
जीवनमुक्ति देहमहँ पाई । हिम्बर रूप धरे सो आई ॥
जाती वरन पलटे सब अंगी । सद्गुरु साँचे मिलि बहुगंगी ॥

साखी-मलयागिरिकी वास ज्यों, दीपक ज्योति पतंग ॥

पारस छुह कंचन भया, स्वाति सीपके संग ॥

चौपाई ।

स्वाती सीप नाम मिटि दोई । मुक्ताइल तेहि कह सब कोई ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास गुरु चरणन परई । शीश नवाय दण्डवत करई ॥
धन्यभाग्य दर्शन प्रभु दीन्हाँ । अधम जीव पावन करलीन्हाँ ॥

साहब दया दास पर कीजै । विदेह मुक्ति कर भेद जो दीजै ॥
 विदेह मुक्ति किम देह समाई । कौन भांति हंसा लखि पाई ॥
 छुच्छी नदी रेन अति भारी । सलिलप्यासकिम मिटे दुखारी ॥
 पाँचों तत्त्व पाँच गति संगी । त्रिगुणफंद जीव यह रंगा ॥
 नऊ नाटीक कहे घटमाहीं । स्वासारूप जीव सँग ताहीं ॥
 मनकी कला अनेक पसाग । काम क्रोध तृष्णा अधिकाग ॥
 लोभ मोह चिन्ता अतिभारी । जड़ता गर्भ कुटिल विस्तारी ॥
 इनके संग काग गति पाई । हंसवरण किमि होय गुसाई ॥
 यही अंग मन चितवन कीन्हाँ । केहिविधि साहब तुमकह चीन्हाँ ॥

साखी—धर्मदाम बिनती करै, साहब बंधन छोर ।

सब अंगमें भरि रहै, विदेह अंगको चोर ॥

सद्गुरु वचन ।

सद्गुरु वचन सुनो धर्मदासा । अगम भेद तोहि कहों प्रकाशा ॥
 विदेहमुक्ति तुम पूछिब आई । सो सब कथा कहो समुझाई ॥
 पुरुष विदेह कमलमों रहेऊ । सुरति विदेह शब्द जौं ठयऊ ॥
 लोक दीप सब सुरतिहि कीन्हाँ । तेहि पाछे मन उत्पन कीन्हाँ ॥
 विदेह मुक्तिकी डोरी चीन्हाँ । शब्द सुरतिके हाथहि दीन्हाँ ॥
 मनहिं समेटि सुरति पहिचानी । सुरति जाय तब शब्द समानी ॥
 शब्द सुरतिकर बांधों भेला । भवसागरसे दीन्हाँ हेली ॥
 शब्दविदेह गुरुकर बासा । सुरतिस्वरूपी शिष्य निवासा ॥
 सुरति शब्दमें लीन्हाँ बासा । विदेहमुक्ति घट भई प्रकाशा ॥
 मायाजाल कृत्रिम सब लेखो । अग्रझलक नैननमें देखो ॥
 कूप झांकि हो वचन विदेही । अग्नी जार उठावै सेही ॥
 अग्र शब्द तबही लखि पावै । मृतक दिशा हो सुरति समावै ॥
 शीतल तपत स्वाद नहिं जानै । ज । प्रण शंका नहिं आनै ॥

चलते फिरत वचन अस भाखा । चेत अचेत बोध नहिं राखा ॥
पुत्री पिता बंधु नहिं जानै । माता बहिन नाहिं पहिचानै ॥
ग्रीहि अभूषण धरै न अंगा । तृषा क्षुधा नहिं स्वाद उमंगा ॥
ऊँच नीचकी नाहिं बिचारी । धर्म अधर्म दोऊसे न्यारी ॥
दुख सुख सब एकहि करिजानी । विदेह अंग ऐसे पहिचानी ॥

साखी—काया सीप सम जानिये, स्वातिशब्द पट आन ।

परख नेह संपुट बँधौ, मुक्ताहल उतपान ॥

चौपाई ।

घर्मदाम इह भेद विदेहा । इह धन धन्य और सष खेहा ॥
जस चकोर चंदा कह ताकै । याविधि लिप्त नामके नाकै ॥
कमलचक्र है मनको रूपा । स्वप्नरूप भर्मित वह भूपा ॥
पाँच पचीस कठिन बिकारा । देह बीच इन राज पसारा ॥
सेमर फूल जसकिरुवां आवा । देखि फूल बहु हरष बढ़ावा ॥
बुंगल गारत सुआ उड़ानो । रोम रोम मिथ्याकर जानो ॥
जाना नहीं विवेक बिचारा । ठोक कपार चलो झँखमारा ॥
मायारूप आहि इमि भाई । जिमि फुल सेमर सुन्दरताई ॥

साखी—नारीरूप नर देखिके, कूकर सम लिपटाय ।

विषय बासनाँ बँधि रहि, विदेहमुक्ति किमि पाव ॥

चौपाई ।

घरी घरी मन काम जगावै । ज्ञान भुलाय नाम विशरावै ॥
स्वप्न माँहि सोई छल करई । गुप्तवासना हृदये धरई ॥
कूद कूपके अगिन मैझारा । राखै कौन जीव निजु सारा ॥
सम्मुख आय बाघके कोई । भक्षण यतन करै वह सोई ॥
रक्षक शब्द जाहि तन गाज । उलटो काल तहाँसों भाजै ॥
यही शब्द घट राखि समाई । माया ताहि स्नान नहिं पाई ॥

सारवस्तु घटमों पहिचानौ । रोम रोम अस्थिर ठहरानौ ॥
 काया सकल कालकी बारी । निमदिनध्यानशब्दचित्तवारी ॥
 देही सकल कालकी जानै । विदेह अंग आपहि पहिचानै ॥
 देह विदेह नेह गण जानै । आपा मेदि आदि गुण ठानै ॥
 याविधि मनमां धरनी करई । आपा मेदि आदि गुण धरई ॥

साखी—कहे तबहार बह आपही, नहि सुमरन नहि जाप ।

धर्मदाम लिखि लीजियो, भकह अगोचरगुंछाप ॥

चौपाई ।

अकह अंश जब कहत रहावा । पांच तत्त्व गुणतीन समावा ॥
 चलन हैमन बोलन बहुबानी । आपुन राजा रंक समानी ॥
 माता पिता धरणि घर कीन्है । आपुहि योग भोग सब चीन्है ॥
 गृह निकरै पुत्रहि उपजावै । आपहि पटकर्मन कट सावै ॥
 भूख प्यास तृष्णा बहु सहिया । दुख सुख जो संगीसोहि रहिया ॥
 अर्थ द्रव्य मृमिण सों राखै । मिथ्या तत्त्व आप मुख भाखै ॥
 सुमिरण भजन आपही करई । अकला वैअकला मंचरई ॥
 भली बुगीको करत विचारा । आपहि पाप पुण्य बिस्तारा ॥
 कबहुक संत असंत कहावै । मनके भाव अनेक दिखावै ॥
 आपही सेवा करै करावै । खीझैं हँसै मनहि पछितावै ॥

साखी—आप आपही रनि रहो, आत्मरूप परवान ।

यासों रहित अपारहै, परमात्म सुस्थान ॥

चौपाई ।

तब साहब अस बचन उचारा । रहित मुक्ति सब इनसो न्यारा ॥
 रहित भाव जो घटमें देखी । आवा गौन रहितई लेखी ॥
 रहित पुरुष कह तबही पावै । अस्थिर ज्ञान चित्तमहँ लावै ॥

लिखे पढ़े नहिं पावै भाई । बिन सतगुरुको देइ लखाई ॥
 प्रेमसुधारस तबही पावै । गुरु बहियां मिलि भेद लखावै ॥
 चित आनंद अस्थिर तब जानै । सुमिरन भजन नाम पहिचानै ॥
 मातु पिता सुत नारि पियारी । पुरजन जलसम रहनि बिचारी ॥
 नाम गोत्र तन शीतल कीन्हां । मिथ्या नारिपुत्र कुल चीन्हां ॥
 भूखहि प्यास गई तन ताको । दुख औ सुखकी आस न जाको ॥
 अर्थ द्रव्य मिथ्या करि जानी । बुधकी बुधी रहित कर मानी ॥
 भली बुरीकी नहीं विवेका । जहँ देखे तहँ आनंद पेखा ॥
 पाप पुण्यकी संशय नाहीं । संत कुसंत रहित जो आही ॥
 मन बुधि चितते रहे भुलाई । पांच पचीस राखि अरुझाई ॥
 बैठे उठे दूजा नहिं आनै । उत्तम मन अमृतरस सानै ॥
 मन अरु बचन रहित करि जानै । श्वासा बीच नाम धुनि तानै ॥
 नयन नासिका रहित अनन्दा । उदित भए जनु पूरण चन्दा ॥
 हाथ पांव इन्द्री बस कीन्हे । सूरय चन्द्र रहित घर चीन्हे ॥
 जो देखे सो रहितै देखे । रहित अनन्द अवर नहिं पेखे ॥
 सब गुण सहित रहन है ज्ञानी । रहित बिना है भेद दिवानी ॥
 जब ही रहित आप वह कीन्हां । पुरुषहि समसर जो जिय चीन्हां ॥
 रहित शब्दमों है मतवाला । ताकहँ देखि मूर्छि रहि काला ॥
 सुरति सम्हार नाम दृढ लीजे । नाम सुधारस भरि भरि पीजे ॥

साखी—इह गुण ज्ञानस्थितिहिको, रहित मुक्तिकर भेद ।

कहै कबीर धर्मदासमों, नाम अमोलिक लेख ॥

रूप मगन मन हो गही, अंग अंग सुखधाम ।

जिमि मिसि कागद पत्रही, लेत सुखदर नाम ॥

चौपाई ।

प्रेम पियाला कठिन रहाई । सत्यरूप धरि पीवे अघाई ॥

जिमि सत्ती सरकों चढ़ि जावै । पिव कारण वह जीव गँवावै ॥
 संसार कहे वह बोलत भाई । जरवर गई प्रेम निर्वाही ॥
 जीवतही जिय पीयके संगी । माया भरम तजौ परसंगा ॥
 जो कोई होय हंस अंकूरी । नाम मनेह गहै भगपूरी ॥
 ज्यो पतंग दीपके काग्न । जीवत आये अंग सब जारन ॥
 अंग विदेह यह अनुसरही । असन बमनकी सुधि नहिं करही ॥
 कहत सुनत जिय तनमहँ डोलै । जीवत प्राण पवनसंग खेलै ॥

साखी—गहितहि मुक्ति कठिन है, कोई न जानत भेद ।

शब्दहि सुरति समायके, हंसराज इह खेद ॥

जो जन पियके मद छकै, करै पियापिय पीव ॥

पीव मिले हिलिमिलि रहै, आस समानेउ जीव ।

चौपाई ।

इश्कभाव है कठिन अपारा । बिरले जीवहि करै सम्हाग ॥
 धर्मदास कहि सुनो गुसाई । कीन्ह कृतार्थ मोकहँ आई ॥
 सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावा । मनचञ्चल सुस्थिर ठहरावा ॥
 कीन्ह कृतार्थ मोकहँ आजू । बगनेव पुरुषहि हंस समाजू ॥
 इह वरदान देहु मोहि स्वामी । कृपासिंधु गुरु अंतर्यामी ॥
 चरणकमल उरसों नहिं टरही । पदपराग मनवासा धरही ॥
 मन चञ्चल है कठिन कठोरा । कैसे प्रीत लगै गुरु वीरा ॥
 सो समझाय देव मोहि भदा । आदि अंत सब कीन्ह निषेदा ॥

साखी—तुम प्रभु दीनदयाल हो, हम निज दास तुम्हार ।

भवसागरतै काटिके, दीजै पार उतार ॥

चौपाई ।

धर्मदास निश्चय मोहि चीन्हां । तुमरे घट हम बासा लीन्हां ॥
 जहँ लागि जीव जगतमें आही । ते सब उवरहि तुमरे बांही ॥

वंश बयालिस जंग औतारा । तेजहुहै जीवन काढ़नहारा ॥
 नामविदेह अकह हम कीन्हैं । सोई वंश हाथ करदीन्हैं ॥
 वचन हमार शब्द टकसारा । चुरामन तासे औतारा ॥
 पुरुषहि अंश आहि निजसोई । शब्द अतीत नाम कहि सोई ॥
 आदि नाम निरअक्षर जानी । मुक्तामणि तिनको पहिचानी ॥
 उनसोंइ सकल गावे साँचा । सोई जीव कालसों बाँचा ॥
 नहिं अक्षर नहिं आदिकि बानी । सोहंग तार पुरुषहि उतपानी ॥
 इतनो भेद जानिहै सोई । जो हंसा हि अंकुरी होई ॥
 बिच्छू मंत्र जानि नहिं पावा । सर्पकी बाँबी हाथ समावा ॥
 मुक्त न होय परे यमखानी । नरक वास औधे मुख आनी ॥
 प्रेम प्रीति जाने नहिं कोई । तामों गए बिगोइ बिगोई ॥
 अक्षर इक्षक आहि निज साँचा । जो चीन्हे सो परले बाँचा ॥

साखी-ज्ञानस्थितिके येह गुन, इक्षक पुरुष निज बास ।

कहे कबीर धर्मदाससों, गाउ अक्षर बिसवास ॥

चौपाई ।

सुर नर मुनि गण गंधर्व देवा । रहित पुरुषकर लखौ न भेवा ॥
 धर्मदास सुनि प्रेम स्वभाऊ । शीस देह तब प्रेम कहाऊ ॥
 अबमैं कहौ मुक्तकर भाऊ । अक्षर मिलि है मुक्त प्रभाऊ ॥
 जो देखे सो समकर देखे । अक्षर बिना पुरुष नहिं पेखे ॥
 भला बुरा सब समकर देखे । नर अरु नारि एककर लेखे ॥
 पाप पुण्य शंका नहिं करई । दुख सुख दोऊ समकर धरई ॥
 नर और नारि एकही घटमों । ज्यों कपास है सूतहि पटमों ॥
 जल थल पवन अकाश बखानी । धर्म अधर्म एक करि जानी ॥
 पाँच पचीसौ बधन करहीं । त्रयदश पाँच ताहिसों तरहीं ॥
 रसना रसपति माया डारी । इच्छासंगम मन फटकारी ॥

नयन नासिका श्रवण तरंगा । जिह्वा इंद्रि करी एक संग ॥
 हाथ पाँव जीव सबमों वामा । पल २ छिन २ करहि प्रकाशा ॥
 काया माँहि शब्द पहिचानौ । मिथ्या जग स्वप्नहि सब जानौ ॥
 लोभ मोह नाहीं चितधारा । निज अक्षरको करै संहारा ॥
 अक्षर बहे शीसके माहीं । सो लखि आवै सतगुरु पाहीं ॥
 उन मुनि करिके अक्षर देखै । अक्षरमों निरअक्षर पेखै ॥
 निरअक्षर है वस्तु अपारा । जो जानै सो उतरै पारा ॥
 अक्षर निर अक्षर दूजा नाहीं । दूजा करै बिगुरुचन ताहीं ॥
 नामसंधि हृदये महुँ राखै । अग्र विदेही अमृत चाखै ॥

साखी—ज्ञानस्थितिके येह गुण, सबविधि करै सहाव ।

मनुवा अस्थिर होइ रहे, पुरुषहि दरस कराव ॥

कहे कबीर धर्मदाससों, अक्षर सुमिरहु सार ।

निरअक्षरसो प्रीति करि, उतरहुभवजलपार ॥

चौपाई ।

धर्मदास तोहि भेद बताई । एहज्ञान काहू नहिं पाई ॥
 बहुतक ग्रन्थ तुम्हें समुझावा । ज्ञानस्थितसो गुप्त रहावा ॥
 जब तुम कीन्हो खोज बहुता । तब एह भेद कहेब अजगृता ॥
 जो यह ग्रंथ सुनै चित गहई । आवागौन तासु निर्बहई ॥
 जो कोइ हंसहिहो अंकूरी । तासो भेद कहिब भरपूरी ॥
 कपटरूप जाके तन होई । तासो वस्तु जो राखहु गोई ॥
 येहि सिखावन पंथ चलावौ । भवसागर के जीव मुक्तावौ ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । तारण तरण जाब बलिहारी ॥
 अब एक इच्छा घटमों आई । सद्गुरुभक्ति करौ चितलाई ॥
 पान प्रमान हमहिं कह दीजे । दीन दयाल दया प्रभु कीजे ॥

संधिक नाम पाइ सुख होई । बिना छाप खातिर नहिं होई ॥
 तब सतगुरुने साज मैगावा । कदली खम्भ आनि गडवावा ॥
 चौका सोरह सुतकी कीज । मान सिखावन हमरी लीजै ॥
 धर्मदास सोई बिधि कीन्हों । जो सद्गुरु कृपा करि दीन्हों ॥
 सोरह हाथ सूत्र तनवाई । सोरह धोती आनि चढाई ॥
 सोरह नरियल लै परवाना । लौंग इलाची धरि मिष्टाना ॥
 मेवा अष्ट जुगितिसो लाई । चौका चन्दन कीन्ह बनाई ॥
 बासन पांच धातुके धरिया । वांछा सहित गाय अनुसरिया ॥
 आरति ज्योति कीन्ह परकाशा । वाजत शख झाल तमनाशा ॥
 धर्मदास औ आमिन आवा । सद्गुरु चरण हिये लव लावा ॥
 चरण पखारि चरणामृत लीन्हों । तन मन धन न्योछावर कीन्हों ॥
 षोडश शब्दहि कीन्ह उचार । मोरत नरियर भौ उजियारा ॥
 धर्मदास परवाना लीन्हों । शिरहि नवाय बंदगी कीन्हों ॥
 तापीछे आमिन चलि आई । कीन्ह बंदगी शीस नवाई ॥
 तब सद्गुरु दीन्हों परवाना । आमिनहिय बहु हरष समाना ॥
 धर्मदास गुरु बंदन कीन्हां । साहव शब्द नाम जो दीन्हां ॥
 सम्बत पन्द्रहसो चालीसा । भादों शुक्ल पाँचदिन तीसा ॥
 पूरणमासी पूरण जानौ । गुरुवासर शरणागति आनौ ॥
 तब सद्गुरुने दीन्ह अशीसा । मुक्तिराज दीन्हो बखशीसा ॥
 मुक्तामणि निज अंश हमारा । आमिनि घट लेहे औतारा ॥
 इनके वंश बयालिस होई । जक्त जीव मुक्तावे सोई ॥

कहे कबीर धर्मदाससों, हम तुम दूजा नाहिं ।

शब्द विवेक विचारकर, जो देखा घटमाहिं ॥

शब्द सुरति औ निरति है, कहिबेको है तीन ।

निरति लौटि सुरतिहि मिली, सुरति शब्द लखिलीन ॥

गुरुशिष्य इमि जानिये, कहिये भिन्नहि भिन्न ।
 शब्द सुकृत एकै भई, सुकृति घटमहँ चिह्न ॥
 यादिवस्तुमोंस्थिर रहौ, अस्थिर अचलसमाध ।
 धर्मदास दर्पत भए, पायो सुखै अगाध ॥

॥ इति श्रीग्रन्थ ज्ञानस्थिति शुभमस्तु ॥

सर्वसन्त महन्त गुरुनके चरणारविंद सम नमो सत्यते ।





अथ संतोषबोध प्रारंभ ।

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

जिसको

✽ खेमराज श्रीकृष्णदासने ✽

बम्बई

निज “श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम) प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शक १८४६.

इसका सर्वाधिकार “श्रीवेङ्कटेश्वर” बन्नालयध्याक्षने
स्वाधीन रक्खा है ।

सत्य नाम ।



श्री कवीर साहिव ।



सत्यमुक्त, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कु-
लपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र
नाम, दया नामकी दया वंश-
व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

त्रयोविंशतिस्तरंगः ।

छोटा संतोष बोध ।

चौपाई ।

धर्मदास बिनती सुन ज्ञानी । अमीशब्द भाषो मृदुवानी ॥
हम सेवक तुम सतगुरु मोरा । जीव अचेत भ्रमवस भोरा ॥
तिनकी आयुष कैसी होई । हंसन मग भाषौ प्रभु सोई ॥

समदश बचन शब्दकी राहू । हंसराज कहु हंसन नाहू ॥
शब्दचाल तेहि काल न पाई । कृपाकरो पद बल २ जाई ॥

ज्ञानी वचन ।

समरथ बचन सुनो धर्मदासा । तुमसों सत्य शब्द परकाशा ॥
संतोषबोध सतहीते भयेऊ । सत्यपुरुष आपन मुख कियेऊ ॥
साधुसंतपर कीन्हे दाया । मोह लोकतें जगत पठाया ॥
छठी अवाज पुष्पतें जैसी । सो वर्णन भाषों में तैसी ॥

पुरुष वचन ।

हौ ज्ञानी तुम अंश हमारा । बचन सत्य में कहों पुकारा ॥
जो कोइ साध मोहको साधे । लोभ मोह तृष्णा गहवाधे ॥
तृष्णा बांध साध जो पावे । आवत लोक वार नहि लावे ॥
तृष्णा लोभ काल व्यवहारा । जो त्यजि है सो हंस हमारा ॥

ज्ञानी वचन ।

तत्क्षण ज्ञानी बिनती ठानी । वचन तुम्हार कोइ नहि मानी ॥
भक्तिहीन आंधर दुनियौई । घट २ फाँस कालगइ नाई ॥
कोट वार जीवन परमोधा । कोइ एक सत्य शब्द ममसोधा ॥
साखी-पृथ्वी जाय जीवन कहि, युग २ शब्द बिताय ।

कोइ एक ज्ञानी चित गहे, आंधर ना पतियाय ॥

पुरुष वचन ।

जाहु वेग तुम वा संसारा । जो समझे सो उतरे पारा ॥
वार २ तुम जगमें जाई । आपन कह सब कथा सुनाई ॥
ज्ञानी वचन ।

धर्मदास तब जग हम आवा । आपन कह जीवन समझावा ॥
युग अशंख अर्ब बहु बीता । कै २ बार पृथ्वी हम कीता ॥
शेष गणेश महेश न ब्रह्मा । विष्णु नाम धरती नहि थम्हा ॥

यह युग बीत अनन्तन बारा । युग २ आयेउ जिव रखवारा ॥
 नर जाने जुलहा अवतारा । साधन काज देह हम धारा ॥
 अगम शब्द नहिं जान गँवारा । बार अनेक जगत पुकारा ॥
 जीवन बारहिबार पुकारा । नरदेही बहुते हैंकारा ॥
 साखी-जीवनसों घर २ कहा, नहिं माने उपदेश ।

गुप्तभाव हम तब भये, चले अमरपुर देश ॥

चौपाई ।

पांजी चले ठाव हम भयेऊँ । सात स्वर्ग ऊपर चढ़ गयेऊ ॥
 तहवां देख धर्म अस्थाना । नानझंकारी ताहि बखाना ॥
 द्वारे वज्र सिला दे बैठे । बैठे हर सब जेठे ॥
 धर्मराय अति प्रबल जगाती । मांगे दान जीव बहु भांती ॥
 तिन हम सबको आद बढ़ा । कस ज्ञानी जीवन मुक्तावा ॥
 हम कहें सुनो दुष्ट वटपारा । छोड़ुहु रार पलकमें मारा ॥
 छोड़ ठाँव यम भये निनारा । पहुँचै अमरलोक मंझारा ॥
 पुरुष दरश कीन्हे तेहि क्षणमें । घट २ व्याप सकल जीवनमें ॥
 तहाँ नहीं परवेश जमन को । बैठक पाँति सकल हंसन को ॥
 हरष शोक नहिं करे कतूला । सदा बसंत फूल ऋतु फूला ॥
 मोर चकोर बोल मृदु बैना । कोकला कोयल वचन सुबैना ॥
 बैठक तहाँही सकल पुरुषकी । बोलत वचन अमीरस रसकी ॥

पुरुष वचन ।

साखी-वह सत बोले पुरुष तब, सुनो सँदेशी अंश ।

भवसागर बहु दिन रहे, केतक लाये हंस ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई ।

रहे शब्दसों तब कर जोरी । बंदी छोर बिनय सुन मोरी ॥
 काम अरु क्रोध मोह औ लोभा । माया फँसै जीव पर शोभा ॥

सकल जीव अघ आतम पुंजा । फिरि २ परहि जनमके कुंजा ॥

पुरुष वचन ।

तब समरथ अस वचन पुकारा । दुनियाँ जात काल मुख द्वारा ॥
 हो ज्ञानी तुम बहुर सिधाओ । शब्द देव जीवन मुक्ताओ ॥
 देव परवाना अपने हाथा । सकल जीव जो होय सनाथा ॥
 तिनका तोरहु यम का लेशा । माथे हाथ दे कहो संदेशा ॥
 नरियर धोती तान मँगै हो । सत्यं शब्द देअंक चढै हो ॥
 येही शब्द येही परवाना । सत्य शब्द निश्चय कर जाना ॥
 सन्त समाज सुनो तुम महिमा । गुरुपद परस दरस एक लहमा ॥
 तेहि समधन नहिं जगमें औरा । कोट जन्म तीरथ फल दौरा ॥
 जो कोइ साध मंदिरमें आवे । चरण पखार चरणामृत लावे ॥
 नारी पुरुष एक मत कीजे । सतगुरु दया अमीरस पीजे ॥

साखी-काम क्रोध तृष्णा तजे, तजै मान अपमान ।

सद्गुरु दया जाहिपर, यम शिर मरदे मान ॥

चौपाई ।

जो ये तक तज सेवा करहै । सो प्राणी भवसागर तरहै ॥
 सेवा करत कसर भई जाई । तवै कालघर बजत बधाई ॥
 सेवा करे चरण चितलाई । पाँच साध मिल भगत कराई ॥
 संतोष बोध जीवन पर भाषा । जो कोइ साधू मन दृढ़ राखा ॥
 जरा मरण तिनका हो नासू । गुरु पद गह सन्त निज दासू ॥
 अगम ज्ञान संतोष वरदानी । हंसा आप होय महिमानी ॥
 अगम अपार ज्ञान संतोषू । सकल सोधु हिल मिल परतोषू ॥
 संतोषज्ञान स्वाती समकहिये । सज्जन सत समझ दृढ़ रहिये ॥
 स्वाती ज्ञान साध जो पावे । सो साधू सतलोक सिधावे ॥

साखी-ज्ञानकथा ऐसो कथे, जस स्वातीको पान ।
सबदिनमें जो गुण करे, सन्त लेह बिलछान ॥

चौपाई ।

संतोष ज्ञान मर्यागिरि जैसे । निकट वृक्ष प्रबल हो जैसे ॥
श्रोता सुने श्रवण शुभ बानी । ज्ञानी हृदय करो बिलछानी ॥
साधू ज्ञान सुने चितलाई । ताका हंस विगोइ न जाई ॥
अन्न सोय जो भूख बुझै है । ज्ञान सोइ जेहि लोकहि जैहै ॥
सतगुरु शब्द गहे जो हियमें । बचन अमोल मानमिल पियमें ॥
जाके हृदे कपट नहि व्यापू । सो साधू मेंटे त्रिय तापू ॥
बहुर न देह धरे यहि जगमें । कमलपत्र सम न्यारे जलमें ॥
जो प्राणी ऐसी गहि रीती । तजतहि देह चले यम जीती ॥
काया तजे प्रीति गुरु लागी । हंस समाज पहुँच अनुरागी ॥
गुरुप्रताप मम दशन पावे । हंसन समसर सेज बिछावे ॥
अमृत फलके भोजन पैहो । अटल दुलीचा सेज बिछैहो ॥
क्रीट रवीस जगमगत मुहावन । अमर चीर शोभा बटु पावन ॥
षोडश रवि जनु अंग लपेटा । हरषहि शोक सकल दुख मेटा ॥

साखी-अस बीरा परताप बल, प्रबल काल क्षय होय ।
जेहि सद्गुरु बहियाँ मिले, हंसन जाय विगोय ॥

इति श्रीछोटासंतोषबोध समाप्त ।

अथ बडा सन्तोषबोध प्रारंभ ।

चतुर्विंशतिस्तरंगः ।



धर्मदास वचन—चौणइ ।

धर्मदास पूछे चितलाई । तत्त्व भेद कहिये समुझाई ॥
 कौन तुरीके योजन दौरा । भाषो साहेब हम हैं भौरा ॥
 तत्त्वनके स्थान चिन्हाओ । बाहर भीतर भाषि सुनाओ ॥
 विनय कहूँ कीजे प्रभु दाया । धर्मदास गहे दोनू पाया ॥
 सद्गुरु वचन ।

धर्मनि सुनो तत्त्व व्यवहारा । निशिवासर का कहूँ विचारा ॥
 तत्त्वतत्त्वका स्थान चिन्हाऊँ । कहिकारि वाहर भीतर दशाऊँ ॥
 स्वासासंग होय आवे जाई । तत्त्वभेद सुनियो चितलाई ॥
 लालतुरी योजन परवाना । मुशकी योजन डेढ सिधाना ॥
 हरीतुरी योजन दोय जाई । पीला योजन तीनि चलाई ॥
 हंसा योजन चारहि ध्यावै । फिरिके दण्ड तबै ल आव ॥
 मूल कमल है तेज ठिकाना । षट दल तत्त्व अकाश बखाना ॥
 कमल अष्ट दल है तत्त्वबाई । द्वादश दल पृथ्वी सुरहाई ॥
 षोडश दल जलतत्त्व बखाना । धर्मदास गहि राख ठिकाई ॥
 याविधि पाचो आवे जाई । अपनी मनजिलको सुन भाई ॥
 पाँचतुरी रथ एक सवारा । ता ऊपर मन जिव असवारा ॥
 जाव पडचो है मनके हाथा । नाच नचावै राखै साथ ॥
 क्षण भीतर क्षण बाहर आवै । सतगुरु मिल तो सधि लखावै ॥

साखी—अष्टपाँखुरी कमल है, ता ऊपर जिव बास ।

तापर मनको आसना, नख शिख तनके पास ॥

धर्मदास वचन ।

साहेब कहो भेद टकसारा । जेहिते जिवका होय उबारा ॥
नौ तत्त्वनको भेद बताओ । सकल कामना मोर मिटाओ ॥
पाँच तत्त्व जानै सब कोई । चारि तत्त्वकी खबरि न होई ॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना । चारि तत्त्व रहे कौन ठिकाना ॥
कहों तत्त्वनको भोजन केता । ताके चेते आगम ह्वै चेता ॥
इनका सतगुरु कहो बिचारा । कहो केता तत्त्व करै आहारा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं अगम बताऊ । नौ तत्त्व को भेद लखाऊँ ॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना । चारि तत्त्व ब्रह्मांड ठिकाना ॥
छठवाँ अग्नि तत्त्व जो होई । नैना बीच रमै पुनि सोई ॥
दोयदल कमल वरणहै चारी । बैठे निरञ्जन आसन मारी ॥
ताहि कमलको नाम बताऊँ । चारि वरणका रूप दिखाऊँ ॥
लखै शब्दसो जानै भेदा । राता पीरा श्याम सपेदा ॥

साखी-ताहि कमलको छाडिके, कीजै शब्द विचार ।

पाँच तत्त्व संभारिहो, उतरो भव जल पार ॥

चौपाई ।

निशि बासर की स्वांसा जेती । कहूँ विचार चले दम तेती ॥
छःसै स्वास इक्कीस हजार । येते निशिदिन दमहि सुधारा ॥
ताको भोजन सबमिलि पावे । जो सतगुरु यहि भेद बतावे ॥
बीस सहस्र पंच देव पाई । ताको लेखो कहूँ समुझाई ॥
प्रतिदेव पाछे चार हजार । रहै जाप सोलहसै सारा ॥
छटवें तत्त्व निरञ्जन राई । जाप सहस्र तहाँ पहुँचाई ॥
सोलहसै मैं छःसै रहई । ताको भेद हंस कोइ गहई ॥
जाप अठोतर जब रहि जाई । ताछिन शब्द सुरति मिलाई ॥

साठसमै बाहर चौपाई । ततछिन हंस लोक को जाई ॥
सुषुमनि तत्त्व करे असवारी । तबे कालकी पहुँचे धारी ॥

साखी-जादिन काल आसहि, पगते करे उजारि ।

भागि जीव चटि बैठही, द्वार कुरफ उचारि ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

साहेब इतना भेद बताई । जाते काल छुवन नहिं पाई ॥
सब तत्त्वनको भायो भेदा । एक २ का कह्यो निषेदा ॥
तत्त्वके संग जीव चलि जाई । कौन ठौरनमें बासा पाई ॥
कौन तत्त्व संग धरे जिवदेही । कौन तत्त्व है मुक्त सनेही ॥

सद्गुरु वचन ।

नौ तत्त्वनका भेद बताऊँ । द्वार तीनको कहि समझाऊँ ॥
तेज तत्त्वमें करे पयाना । वज्रशिलामें जाय समाना ॥
आकाश तत्त्वमें छूटे भाई । तारागणमें जाय समाई ॥
वायु तत्त्वमें छाडे देहा । वन वृक्षनमें जाय उगेहा ॥
पृथ्वी तत्त्वमें छूटे भाई । तौ जीव देह पशुकी पाई ॥
जल तत्त्वमें जब छूटे जाई । नरकी देह धरे तब आई ॥
अग्नि तत्त्वमें तजै शरीरा । होय पशुपक्षी कहै कबीरा ॥
छे तत्त्वनको कह्यो बिचारा । तीन तत्त्वको भेद निनारा ॥
तीन तत्त्व भेद जो पावे । निश्चय हंसा लोक सिधावे ॥

धर्मदास वचन ।

छे तत्त्वनको पायो भेदा । तीन तत्त्वको कह्यो निषेदा ॥
तीन तत्त्व देहु प्रकट बताई । जासे हंसा लोक चल जाई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास सुनियौ चितलाई । तीन तत्त्व में देउं बताई ॥
शब्दतत्त्व जो जानै भाई । सुरति तत्त्वको ध्यान लगाई ॥

नीर तत्त्व जाके घट होई । ताकर आवागमन न होई ॥
 नौ तत्त्वनको कह्यो बिचारा । धर्मदास तुम करो सँभारा ॥
 कहूँ भेद तत्त्वकी बानी । क्षेत्र अधरहै नाम निशानी ॥
 षष्ठ कमल नैन लगि देखा । तीन भेदको कहूँ विवेका ॥
 तीन भेद पुरुषके पासा । छाड़े काल जीवकी आसा ॥
 पुरुष शब्दहै शीतल अंगा । तत्त्व निःअक्षर कमलके संग्गा ॥
 आप पुरुष तेहि पिण्ड न हाथा । पुरुष बिदेहि शीशविन गाथा ॥
 कायामांदि लगी यक नाला । तहवां रहे निरंजन काला ॥
 ताशिर ऊपर पांजी लागी । ताहि चढि हंसा जाये आगी ॥
 स्वेत औ पीत कमल है गाता । तीन तत्त्व जीव संग्ग रहाता ॥
 ताहि तत्त्वको भाव सुनाई । तीन रूप तीन महिठाई ॥
 कायाक्षेत्र ताहि हम दीन्हैं । खेत कमाय सो आगम चीन्हैं ॥
 सप्तपाखुरी कमल यक होई । ताकर भेद कहौं मैं सोई ॥
 कमल एक लोकहैं तीना । तीन लोक तीनोंपुर कीना ॥
 चौथालोक अधर कहिचीन्हैं । ताकरि काल गमन नहि कीन्हैं ॥

साखी—तीनलोक विचारिके, गहे शब्द टकसार ।

कहैं कबीर विचारिके, उतरो भवजल पार ॥

धर्मदास वचन--चौपाई ।

साहेब बचन कही परमाना । तीनलोकका कह्यो ठिकाना ॥
 चौथालोक मोहि समझाई । सुनू भेद तब मन पतिआई ॥

सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास मैं तोहि बुझाऊँ । तीनलोक स्थान चिन्हाऊँ ॥
 ब्रह्मलोक लिंग अस्थाना । तहाँते उत्पति होय निदाना ॥
 विष्णुलोक नाभी विस्तारा । शिवका लोकहै हृदय मँझारा ॥

चौथालोक अधर अस्थाना । कहै कबीर मैं कहाँ बिधाना ॥
ताहि लोकको ध्यान लगावे । चलत हंस काल नहि पावे ॥

साखी-अधर करै घट आसन, पिण्ड झरोखे नूर ।

मैं अदली कदली बसूं, कहाँ खोजै बडि दूर ॥

धर्मदास उवाच--चौपाई ।

साहेब लोक कहा हम जाना । और भेद कछु कहो बखाना ॥
सात पांखडी वरणि दिखाओ । भिन्न २ करि मोहिं लखाओ ॥

सतगुरु उवाच ।

सात पांखडी कहूँ ठिकाना । धर्मनि बचन सत्तकर माना ॥
श्रवण दोय पांखडी जाना । सुने शब्द तबही सुख माना ॥
दोय पांखडी नैन बखानी पापदृष्टि सबही क्षय हानी ॥
पांचये पांखडी कहूँ बिचारा । रसना शब्द उठै हंकारा ॥
छठी पांखडी इन्द्री जानी । उत्पति बिन्दुले डारे तानी ॥
सातवीं पांखडी हेठ बतावा । खोजे कमल स्थिर घर पावा ॥
पांखडी सात कमलहै एका । भीतर ताहि जीव मन ठेका ॥
ताहि कमलमें तार लगाई । सोइ तारको चीन्हो भाई ॥
सोही तार अधर ले राखा । जो कोइ साधु हृदमें ताका ॥
ताहि तारका बहुत पसारा । खंड ब्रह्मांड पाताल संबाग ॥
ताहि तारमें डोरी लागी । बिरला चीन्हे संत सभागी ॥
श्रेयभाव तारको अंगा । नाम निःअक्षर ताके संगी ॥

साखी-कहै कबीर धर्मदाससे, गुप्त निःअक्षर नाम ॥

निःअक्षर लखपावई, होय जीवको काम ॥

धर्मदास उवाच--चौपाई ।

कमलभेद तुम भले सुनाया । अक्षरभेद सोइ हम पाया ॥
साहेब कहो जीव किमि आया । नरदेही कैसे करि पाया ॥

कैसे घटमें कीन पसारा । कौन अस्थल बैठक संवारा ॥
इतना भेद कहीं समझाई । सतगुरु में तुम बलि जाई ॥

सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास सुनियो चितलाई । जो बूझे सो देखें बताई ॥
पवनजीव ब्रह्माण्ड रहाई । ता पीछे नाभी चलजाई ॥
नयन नासिका कीना साखी । मूल कमल सुरति गहि राखी ॥
चक्षुज्योति जो बरे उजियारा । हिरदाकमल ब्रह्माण्ड मझारा ॥
जीव बैठे द्वीपन में जाई । काया क्षेत्रमें जाय समाई ॥
ता विधि घटमें जीवहिआया । रज बीजहीते पिंड बँधाया ॥
शीश स्वारी बांही निर्माई । कंठ कमल हृदय बनाई ॥
ता ऊपर द्विपि बदन सवारा । पवनजीवसे भय उजियारा ॥
कमल सबज स्वेत है राता । नाभी सकल पुनि सब गाता ॥
ता पीछे दोय खम्भ लगाया । रचिकाया पुनि जीव समाया ॥
स्वाती पवन पुरुषकी स्वांसा । जिन कीना जीवन संग बासा ॥
ताको भेद सुना धर्मदासा । तौलि लेहु सत्ताइस मासा ॥
छिन छिन पलपल आवै भाई । जीव संधि लेखे नहिं पाई ॥
प्रथम घड़ी ब्रह्माण्ड रहाई । दूजी घड़ी नाभी चल जाई ॥

साखी-तीजी घड़ीके बीतते, फिर तहँवा चलजाय ॥

अस बिधि रहनी जीवकी, कहै कबीर समझाय ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

जा बिधि जीव देहमें आया । सोई भेद हम निज कर पाया ॥
दयावंत प्रभु और बताई । छूटै हंस कौन दिशि जाई ॥
काया तजिकै होय न्यारा । कौन दिशा हंस पगुधारा ॥
तौन ठाम मोहि देहु बताई । तहां सुरति राखूं ठहराई ॥

साखी-चारखूट धरनी अहै, आठ दिशा है पवन ।

सतगुरु कहो विचारिके, हंसाके दिशि कवन ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

मारग दोय तोहि कहुँ ज्ञाना । एक बंधन एक मोक्ष बखाना ॥

जो स्वासा सँग करे पयाना । पांच तत्त्वमें जाय समाना ॥

फिरि फिरि आवै फिरि रजावे । बहुरि जगमें नाम धगवे ॥

अधर तत्त्वमें शब्द निवासा । ताहि माहि जिव करै जो बासा ॥

सार शब्दमें रहे समाई । अभय द्वार होइ आवै जाई ॥

वहां न लागै काल कसाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥

गुप्तभेद काहु बिरलै पावा । तुमको धर्मनि प्रकट सुनावा ॥

साखी-उत्तर घाटी ऊतरे, अधरहि बैठे आय ।

तहांते सुरति लगावई, पुरुषके परसे पाय ।

धर्मदास वचन चौपाई ।

ताहि अधरको कहो ठिकाना । देखूं जब मेरा मन माना ॥

बिन देखे परतीत न आवै । जो नहिं सतगुरु भेद बतावै ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास मैं भेद बताई । जाय अधरमें जीव समाई ॥

ताहि अधरको कहुँ ठिकाना । योजन आठ ऊपर परमाना ॥

साखी-एक अधर होय आवही, एक अधर होय जाय ।

एक अधर आसन करै, अधरही माहि समाय ॥

चौपाई ।

प्रथम हंस सुखसागर जाई । सुखसागरमें दर्शन पाई ॥

सुखसागरका यही सँदेशा । लागे उडुगण पाती कैसा ॥

हंसा पैठिके कीन सनाना । भय उजियारी षोडश भाना ॥

लागी डोर शब्दकी नेहा । असपांजी अधर बिदेहा ॥

लागी डोर शब्दकी तारा । चढ़ै हंसा पांजी उजियारा ॥
चढिके हंस अधरसे पेखा । हंसा उलटि ठाटको देखा ॥
भलि साहेब मोहि कीनि दाया । छूटि सकल मोह और माया ॥
पुहुपमांहि जस वास समाना । हंस धरै इमि पुरुष ध्याना ॥
या विधि हंस अमरघर जाई । धर्मदास सुनियो चितलाई ॥

साखी-धरती अकाशसे बाहिरे, जहां शब्द निर्वान ।

तहां जीव चढि बैठही, काल मरम नहि जान ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

सद्गुरु भेद सतहि समाना । द्वीपखंडका कहो ठिकाना ॥
कायाखंड कहो मोहि भाखी । जाते जीव अमरघर राखी ॥
सतगुरु उवाच ।

धर्मदास बूझी भल वानी । सत्यवचन तोहि कहूं बखानी ॥
प्रथमखण्ड शब्द है भाई । दूसर खण्ड सुरति ठहराई ॥
तीसर खण्ड निरतिमें ठयऊ । चौथा खण्ड प्रेम निर्मयऊ ॥
पांचवाँ खण्ड शील है भाई । छठाँ खण्ड क्षमा निर्माई ॥
सातवाँ खण्ड संतोष दृढाया । आठवाँ खण्ड दया समझाया ॥
नव खण्ड भक्ति कहि दीन्हैं । धर्मदास तुम निजकरि चीन्हैं ॥
इन खण्डनमें खेलै जाई । निश्चय हंसा लोक सिधायै ॥
सुनो सात द्वीपनके नाउँ । भिन्न भिन्न करि कहि समझाऊँ ॥
द्वीपतत्त्व है बड उजियारा । ताको निशिदिन करो विचार ॥
धर्ती तत्त्व अग्नि जो होई । द्वीपजलानिधि जाय समोई ॥
तेजतत्त्वमें भाषि सुनाई । द्वीप शून्यमें जाय समाई ॥
जलका तत्त्व कहूं विस्तारा । तेहि सुखसागर द्वीप सिधारा ॥
वायस तत्त्व सुनो धर्मनिवानी । पवनद्वीपमें जाय समानी ॥
तत्त्व अकाश कहूं समझाई । द्वीपस्वर्गमें जाय समाई ॥

अग्रितत्त्वकी सुनियो बानी । दीपअग्रिमैं जाय समानी ॥
सुषुमनि तत्त्व कहूं समझाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥

साखी-सातद्वीप नौ खण्ड हैं, इनमें रहे समाय ।

कहे कबीर धर्मदाससे, निश्चय लोक सिधाय ॥

धर्मदास उवाच ।

साहब भेद कह्यो हम जाना । सातबारका कह्यो ठिकाना ॥
सातबार कैसे उपजाई । चन्द्र सूर्य कैसे निर्माई ॥
सूर्य कैसे तेज समोई । सीतल चन्द्र कौन विधि होई ॥
निशिवासर कैसे कर जानी । ये सब भेद कह्यो मोहि ज्ञानी ॥

सतगुरु उवाच ।

धर्मदास बूझी बल नागर । संत सुकृत तुम ज्ञान उजागर ॥
कहूं भेद सुनियो चितलाई । चन्द्रसूर दिनवार बताई ॥
पुरुष कमलते सातो बारा । ताको भेद कहूं टकसारा ॥
सप्तपांखडी जब बिकसाई । सातवार तहांते आई ॥
आठवां बार कमलमें रहेऊ । ताहि बारते सातो कियऊ ॥
कलीकमल भये अँधियारा । निशिवासरको भयो विचारा ॥

साखी-मंजन कीनो कमलको, छोलन कीनो पास ।

चन्द्रसूर जाते भये, कियो पृथ्वी प्रकाश ॥

चौपाइ ।

पहिले छोलन जल नहिं रहेऊ । ताते सूर तेज जो भयऊ ॥
सुनियो चन्द्रकेरि शीतलताई । धर्मदास में देखैं बताई ॥
सींच्यो अमी छोल पुनि जबही । शीतल चन्दा उपजे तबही ॥
छोलन चूनि झरि झरि परही । नक्षत्र चन्द्रमा संगति करही ॥
यहिविधि चन्द्रसूर जो भयेऊ । धर्मदास हम तुमसे कहेऊ ॥
यह सब रचना कूर्मको दीना । पाछे ध्यान अधरमें कीन्हा ॥

सब विस्तार कूर्मही दयऊ । तब ही पुरुष कन्याको कियऊ ॥
 रचना रही कूर्मके पेटा । धर्मराय ताघर नहि दीठा ॥
 साखी-रचना रही कूर्ममें, पुरुषहि दीन सवांरि ।
 जाते शब्द उत्पति भई, सो मैं कहूँ विचारि ॥
 चौपाई ।

धर्मराय सेवा सितधारा । तब पुरुष ताहि बाचा हारा ॥
 पुरुष दीन उत्पति धर्मराई । धायके लडे कूर्मसे जाई ॥
 साखी-क्षीणै माथा नख करी, हरे सबे विस्तार ।
 महाशून्य लेय आयऊ, धर्मराय बरियार ॥
 चौपाई ।

निकसी खान वेद रस बानी । चांद सूर्य्य यों उडगण जानी ॥
 सब विस्तार निकसिजब आया । धर्म जलनिधि राख छिपाया ॥
 साखी-निकसी वस्तु कूर्मते, ना कोइ कीन विचार ।
 मूलबीज जब पाइया, भयाकाल बरिआर ॥
 धर्मदास उवाच-चौपाई ।

को ले शीश कूर्मका छीना । यह तो भेद सकल हम चीना ॥
 धर्मराय कन्या कैसे पाई । तीन देव कैसे उपजाई ॥
 सद्गुरु उवाच ।

अद्या पुरुष दीन पठवाई । आदि भवानी अमृत लाई ॥
 अष्टांगी देखी धर्मराई । ताखु सुरति संयोग बनाई ॥
 अद्याके विधि शिवसो मुरारी । मथि जलनिधि रतन निकारी ॥
 अष्टांगीते भये विस्तारा । सब रचना या कीन हमारा ॥
 कूर्म वर्णन ।

बिनती कूर्म पुरुषते लाई । तब सुत शीश हमार छिनाई ।
 छोछा उदर भया हमारा । अहो पुरुष कछु देहु अहारा ॥

साखी-वचन तुम्हाग मानेऊ, राखि शब्दकी कानि ।

नीर जलानिधि सोखिके, मेटत सब उतपानि ॥

पुरुष उवाच ।

वाणीपुरुष अधरसे कहेऊ । जाउ कूर्म मागि सो लेऊ ॥

वचन हमारा सत जो होई । जो मांगो सो देऊ तोई ॥

कूर्म उवाच ।

साखी-ना कछु भोजन चाहूँ, ना कछु कहूँ अहार ।

चन्द्र सूर्य जब पाउं, तब लेऊं शिर भार ॥

पुरुष उवाच-चौपाई ।

चांद सूर्य मैं देहूँ तोही । कैसे चलै सृष्टि पुनि सोही ॥

जो जगमें होय अधियारा । कैसे चलै सृष्टि व्यवहारा ॥

कर्म उवाच ।

साखी-चांद सूर्य चलि आवही, तो मैं कहूँ अहार ।

चांद सूर्य पडुंचे नहीं, निगुलूं सब संसार ॥

पुरुष उवाच-चौपाई ।

पुरुष वचन तब कहे बिचारी । भोजन सूर पहरलेहु चारी ॥

शशि भोजनका भाषू लेखा । घड़ी घड़ीको कहूँ विवेका ॥

अमी चन्द्रके पेट रहाई । ताको लेखा कहुँ समझाई ॥

अमृत क्षणक्षण तुम लेहो । पाछै सम्पूरण करि देहो ॥

चन्द्रतेज धर्मनि इमि हानी । सूर्यतेज जो बहुत बखानी ॥

कूर्म पुरुष वचन हियो देखा । घड़ी पहरको बाधे लेखा ॥

पल क्षण दंड परमाना । घड़ी पहरकी कहूँ ठिकाना ॥

षट स्वासाकी पल एक होई । षट पलकी क्षण जानों सोई ॥

दश क्षणकी एक दंड बखाना । दोय दंड एक घड़ी परमाना ॥

चारी घड़ी एक पहर विवेका । चारि पहरका दिन एक लेखा ॥

सात वार दूना करि जाना । यहि विधि पाख भयो परमाना ॥

दोयपाखको मास बखाना । दोयमासकी ऋतु यक जाना ॥
 दोयऋतुको यककाल विशेषा । तीनचौकड़ी बरष यक देखा ॥
 आगे देखो ताकर लेखा । धर्मपास अब कहूँ विवेका ॥
 निशि वासर पुनि होय जबही । कर्म अहार सूरले तबही ॥
 चारिपहर निशि करै जो ग्रासा । बासरसुर सब होय प्रकाशा ॥
 अब चन्दाको कहूँ बखाना । धर्मदास तुम निजकरि जाना ॥
 कृष्णपक्ष पडिवा जब आवे । कूर्म अहार चन्द्रको पावे ॥
 कूर्मअहार चन्द्र इमि लीन्हौं । घडी घडी घटती तब कीन्हौं ॥
 शुक्लपक्षते भया निवासा । पूनम चन्द्र किया प्रकाशा ॥
 पूनम व्रत कूर्म जो कीन्हा । ताते चन्द्रग्रास नहिं लीन्हा ॥
 अमी चन्द्रमें रहे समार्ई । पूनम अधिक जाहिते भाई ॥
 पूरण व्रत पूनमको होई । पूनममें चौका आरम्भे सोई ॥
 तीन व्रत वंशको दीना । अंशबचाय अपना करि लीना ॥

साखी-दीना अपने वंशकी, करि हैं शब्द संभार ।

गुप्तनाम गहि राखि है, हंस उतारे पार ॥

चौपाई ।

सुमिरे नाम औ सुरति संभारे । नाम पान दे हंस उबारे ॥
 जा दिन मुक्ति साधे कोई । निःअक्षरकी गमताही होई ॥
 पूरण व्रत पूनम जो होई । पूनम चौका कूर्मका सोई ॥
 अहो कूर्म आसन पर जाई । सत्य वचन कहूँ समझाई ॥
 येहि सुनि हर्ष मन आई । पुरुष वचन जब कहे समुझाई ॥
 ऐसे वचन कूर्मको भयऊ । कहैं कबीर धर्मनि सुनि लयऊ ॥

धर्मदास वचन ।

साहेब भेट कहे हम पेखा । अब भाष्यो पवननकर लेखा ॥
 पवन भेद मोहि कही समुझाई । वचन तुम्हार रहूँ लबलाई ॥
 कहो कहाँ ते पवन उठि आई । दिशा भेद तुम मोहि सुनाई ॥

कवन पवनते जीव उत्पानी । सोई पवन तुम कहौ बखानी ॥
 ताहि पवनको नाम बताओ । कर्म काटि हंसा मुक्ताओ ॥
 कैसे सीप स्वातीको पावै । कारण कौन बांझ रहि जावै ॥
 ये सब भेद दया करि कहेऊ । साइब मोहि अपना करि लयऊ ॥
 सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास सुनु पवनकी खानी । कूर्म मुखते पवन उत्पानी ॥
 चारि अरति पवन उठि आया । ताको भेद कोई जन पाया ॥
 शीश कूर्मका कहूँ बखानी । साधु सुजन कोइ कोइ जानी ॥
 माया आठ पृथ्वीमें भीना । आठ दिशा भइ ताकर चीना ॥
 माथा आठ आठ है माना । चारि दिशा चारि कौन परमाना ॥
 माथा तीन छीनि ले गयऊ । माथा तीन पेटमें रहेऊ ॥
 काकर चौदह भुवन बनावा । सोई रूप नर करे सुभावा ॥
 अधर पवन सो जीव उत्पानी । चलै उर्द्धसों अधर समानी ॥
 ताहि वचन को पारस नामा । होय संयोग उठ जब कामा ॥
 बाई और ते देहि जगाई । उमगे काम चलै मनताई ॥
 चलै बिन्दु तीन मुख धाई । उरधहुते अरध जब आई ॥
 ऋतुबसन्ता जादिन होई । स्वाती पवन पडै पुनि सोई ॥
 ऋतुबसन्त त्रियतन आवे । खुले कमल तब चाह जनावे ॥
 शिव शक्ति सो मिलि है आई । स्वाती बुन्द शक्ति तब पाई ॥
 तौन पवन बिंदु गहि लेही । ताते बांझ होय नहि तेही ॥
 उत्पति पवन कही हम सोई । स्वाती पवनले सम्पुट होई ॥

साखी—जाहि पवन पर चन्दा रसे, ताहि न ग्रासे काल ।

को यह भेद विचारि है, सोइ जौहरी लाल ॥

चौपाई ।

धर्मदास तोहि कहूँ बिचारा । सुझि पडै सो भेदन्यारा ॥

स्वाती पवन छुवन नहिं पावे । बिन्दु अकेला जो उठिधावे ॥
ताते शून्य होय पुनि जाई । कहूँ भेद चित राखु समाई ॥
पवन भेद हम तुमसो कहेऊ । नाम न्यारा इनते रहेऊ ॥
साखी-पवन भेद हम भाखेऊ, तामें कालपसार ।

पचासी पवनके बाहिरे, अरज शब्द है सार ॥

धर्मदास उवाच—चौपाई ।

पवन भेद सतगुरु हम जाना । अब कछु कहिये नाम बखाना ॥
निःअक्षरका कहो प्रकाशा । हे भीतर कि बाहर बासा ॥
कैसे हंसा लोक समाई । कौन वस्तु जो होय सहाई ॥
कैप्रमान वस्तु जो होई । साहेब मोहि कहो तुम सोई ॥

सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । संशय तेरो सबहि मिटाऊँ ॥
बावन अक्षर मय संसारा । निःअक्षरसो लोक पसारा ॥
सोई नाम है अक्षर निवासा । कायाते बाहर प्रकाशा ॥
नाम भेद मैं तुमसे कहेऊ । धर्मदास तुम निज करि ठहेऊ ॥
तौन नाम सुनि हंसा पावे । कहै कबीर सो लोक सिधावे ॥
साखी-धरनि अकाशके बाहिरे, योजन आठ परमान ।

तहां क्षत्रतन राखेऊ, हंसा करे विश्राम ॥

चौपाई ।

बिन सतगुरु कोइ भेद न पाई । धर्मदास मैं तोहि लखाई ॥
राई भर है वस्तु हमारी । अर्धराय स्थूल सवाँरी ॥
लहर लहर बादलमें होई । पुरुष मूल निज जानो सोई ॥
उनको सौप दीन शिर भारा । वै जीवनको करै उबारा ॥
भाषू शब्द प्रथमहैं राई । फूटि अकाश घोर होय जाई ॥
वाहिबक्त जो तजै शरीरा । आवै लोक अस कहै कबीरा ॥

सत्तलोक अधरई धामा । तहवाँ पुरुष अजरई नामा ॥
 तौन नामले हंस उड़ाना । पडुच हंसलोक अस्थाना ॥
 तहाँ गये जिवकाल न पावे । योनि संकट बहुरि न आवे ॥
 साखी-सबे भेद हम भाषेऊ, कहा शब्द टकसार ।

धर्मदास प्रतीति करि, सुमिरहु नाम हमार ॥

धर्मदास उवाच-चौपाई ।

कहेउ शब्द मोरे मन माना । अब प्रभु कहिये सुरति ठिकाना ॥
 कहो सुरतिकी उत्पति भयेऊ । कहो निरति दूसर निर्मयऊ ॥
 कौन मरूप सुरतिको जानी । कैसे निरति दूसरी ठानी ॥
 कैसेके घट आनि समानी । सो समरथ मोहि कहो बखानी ॥
 सुरतिनिरतिसंगतिकिमि भयऊ । कैसे समझ हृदयमें लहेऊ ॥

साखी-सुरति निरतिकी उत्पति, सब कहि भाषहु मोहि ॥

दोनों कैसे देखिये, पूछतहौ गुरु तोहि ॥

सद्गुरु वचन-चौपाई ।

धर्मदास में कहूँ बखानी । भाखूं सुरति निरति उत्पानी ॥
 मूल नाभि ते शब्द उचारा । फूटीनाल भई दुइ धारा ॥
 स्वाती पवन अधरते आई । सुरतिनिरतिसंगति मिलि धाई ॥
 सुरति निरति यों उत्पति होई । ताको भेद लखे जन कोई ॥
 सुरति निरतिकी सुधि ना पाई । सो नर पशु पक्षी है भाई ॥
 मूर्ख सो मोहरति है गयऊ । शब्दबांधिजिनसुरतिना गहेऊ ॥
 तेहि शब्दका करो विचारा । सुरति निरतिले शब्द संभारा ॥

साखी-अंकुर नाम वह शब्द है, कीना सकल पसार ।

कहै कबीर धर्मदास सों, गहो शब्द टकसार ॥

चौपाई ।

गहै शब्द सो लोक सिधार्ह । बिना शब्द पशु पक्षी भाई ॥

बिना शब्द जैसे घट अंधियारा । धरि धरि काल करै आहारा ॥
 शब्द सुरति निरति यक ठौरा । कहे पुरुष तहां मोहि निहोरा ॥
 अगम तत्त्व गहि मथै शरीरा । निरति नाम भये सत्त कबीरा ॥
 निरति धरे शब्दकी आशा । सुरति नाम तुम गहु धर्मदासा ॥
 सुरति निरतिसे बांधे नेहा । पावै नाम होय हंस विदेहा ॥
 कथि ज्ञान भाषेउ टकसारा । धर्मदास तुम करो विचारा ॥
 हम तुम कीना सकल पसारा । लोक न जाने मूढ गँवारा ॥
 मथुरा बैठिके ज्ञान सुनाई । धर्मदास गहे सतगुरु पाई ॥
 पूरण ज्ञान तुम मोहि सुनाया । संसय सबही दूर बहाया ॥

साखी-गुरु समाना शिष्यमें, शिष्य लिया कर नेह ।

विलगाये बिलगे नहीं, एक प्राण दुइ देह ॥

इति श्रीग्रन्थसंतोषबोध समाप्त ।







सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कु-
लपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र
नाम, दया नामकी दया वंश-
व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

पञ्चविंशतिस्तरंगः ।

अथ काया पांजी प्रारम्भ ।

धर्मदास उवाच—चौपाई ।

धर्मदास जब बिनती कीना । कायापांजी पूँछ सो लीना ॥
धर्मदास पूछै चित लाई । कायापांजी कहो अर्थाई ॥
कायापांजी कहो विचारी । जहाँ होय तत्त्व करै पैठारी ॥
काया पांजीका करौ बखाना । जहवां सुरतिका सदा ठिकाना ॥
कायापांजी निजकर पाऊँ । सुरति शब्दमें जाय समाऊँ ॥

कायापांजी कर कहो विशेखा । मैं अपने घट कहुं बिबेखा ॥
 करि विवेक तहुं सुरति लगाऊँ । पांजी द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
 सुरति लगाय रहूँ मैं तहुंवां । सार शब्द मूल है जहुंवां ॥
 करि विवेक तहां सुरति पठाऊँ । पांजी द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
 पावो घाट सुगतिके द्वारा । तो मैं सुरति करो पैठारा ॥
 बिना घाट कहां जाऊँ भाई । बिन जाने कहूँ रहूँ समाई ॥
 बिन जाने जाऊँ केहि घाटा । कैसे पाऊँ शब्द के बाटा ॥
 बिन जाने शब्दकरि घाटा । शब्द अगम अगम है बाटा ॥
 शब्दके अंग अगम है भाई । बिन जाने सब गये नसाई ॥
 पाऊँ द्वार शब्दका टीका । अवर सकल जग लागे फीका ॥
 अगम शब्द कहो अर्थाई । बिन पाये शब्द गह्यो न जाई ॥
 मूल शब्द जहुं होय उचारा । सो पाऊँ सुमेरु चढि द्वारा ॥
 भाषो द्वार सुमेरु बखानी । कहवांते समेरु पुनि जानी ॥
 कहवांते अकाशका लेखा । सो मोहि सादेब कहो विवेखा ॥

साखी-धर्मदास बिनती करे, घाट कहो समझाय ।

तहां मैं सुरति लगाइके, शब्दमें रहूँ समाय ॥

सद्गुरु उवाच-चौपाई ।

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । सुरति शब्दका द्वार चिन्हाऊँ ॥
 चन्द्रलगनका कहूँ विचारा । तहुंवां सुरति करो बैठारा ॥
 चन्द्रद्वार होय आवो जाई । यही घाट मैं रहो समाई ॥
 दोउ स्वर साधि करो यक घाटा । चन्द्रद्वार होय पावो बाटा ॥

धर्मदास उवाच ।

कोन घाट चन्द्र है भाई । कोन घाट सुरय पै आई ॥

सतगुरु उवाच ।

दहिने घाट चन्द्रका बासा । बाँवें सूर करै प्रकाशा ॥
 यही दोउ स्वर साधो भाई । चन्द्रद्वार होय निकसो आई ॥
 अगम पंथ दहिने स्वर करहू । सुरति संयोग नाल चित धरहू ॥
 चन्द्रद्वार होय आओ जाई । शब्द सुरतिमें रहो समाई ॥
 स्वर दाहिने सुरति चढ़ाओ । तबही डोर शब्दकी पाओ ॥
 शब्द डोर दहिने दिशि जाई । धर्मदास तुम गहो बनाई ॥
 पावो डोर शब्दको भाई । अगम पंथ चढ़ि बैठो जाई ॥
 गहो बनाइ कटै यम पासी । पहुँचो लोक मिटै चौरासी ॥
 स्वर दाहिने होय करे पयाना । तब सोहं सुरति होय अगु आना ॥

साखी-कहैं कबीर धर्मदाससे, ऐसा साधो घाट ।

आगे भेद बतावऊं, तहं देखो लिजवाट ॥

चौपाइ ।

अहो धर्मदास मैं भद बताऊं । शब्दहि सुरतिका द्वार चिह्नाऊं ॥
 भाष्यो शब्द सुरतिका पासा । सो मैं तुमसे कहों प्रकाशा ॥
 कहूँ तत्त्व तहँ करो जो बासा । मथो तत्त्व तुम धर्मदासा ॥
 मथो तत्त्व सुरति सो भाई । पुनि आगेको देहु रंगाई ॥
 तत्त्व मथो तुम अंश हमारा । तत्त्वसे उतरो भवजल पारा ॥

धर्मदास उवाच ।

कह्यो तत्त्व तुम मथो बनाई । ज्ञानी तुमहि कहो समझाई ॥
 कहवा आहि तत्त्वको बासा । सो ज्ञानी मोहि कहो प्रकाशा ॥

सतगुरु वचन ।

दहिन स्वर साधि चढ़ो आकाशा । त्रिकुटी मध्य तत्त्वका वासा ॥
 त्रिकुटी मध्य तत्त्व जो रहाइ । तहँ सुरति सो देखो जाई ॥
 त्रिकुटी मध्य तत्त्वको थाना । तंहि मथि आगे देहु पयाना ॥

सुरति डोरी चलै वरजहेग । मथिके तत्त्व कपाट उघेरा ॥
 तेहि आगे सुमेरु बखानी । बरनो द्वार स्वरूप खानी ॥
 बाहि द्वार होय सुरति चढ़ाओ । आगे अगम भेद पुनि पाओ ॥
 त्रिकुटी आगे सुमेरु ठेकाना । तापर जुडचा अकाश बिधाना ॥
 आंगुलचारि अकाश परमानो । धर्मदास तुम निजकर जानो ॥

धर्मदास वचन ।

अब अकाशका भाखो राहा । हम अजानका जानों थाहा ॥
 सद्गुरु वचन ।

अब अकाशका भाखूं लेखा । सुरतिकमल तहँ निजकर देखा ॥
 बायें धर्मराय अस्थाना । दहिने सुरति द्वार ठिकाना ॥
 सुरति कमल सुमेरुके आगे । बिहँगम डोर तहांसे लागे ॥
 सुरति कमलके रूप बखानो । एक चन्द्र आभा अनुमानो ॥
 बाहि कमलमें झलकै चंदा । सुरति चढ़ायतुम करो आनन्दा ॥
 तहवां डोर शब्दकी भाई । सुरति संयोग चट्टि देखो जाई ॥
 सुरति नाल है बड़ बरियारा । मध्य लिल्लाट धर्म रखवारा ॥
 शब्द काहे न करहु विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
 दहिने सुरति कमल कहँ पावा । तेहि आगे पुनि ध्यान लगावा ॥
 तेहिढिगसुरतिकमलको लेखा । सुरति तत्त्व नैन बिन देखा ॥
 ताकर भेद मैं देउँ बताई । सुइ परमाण द्वार निरमाई ॥
 धर्मदास मैं कहूं पुकारी । तिल परमाण लगी केवारी ॥
 तेहि केवार दोय है घाटा । चढ़े सुरति तब पावो बाटा ॥
 सोहं सुरतिले चढो सँभारी । तिल परमाण तहँ सुलै केवारी ॥
 नासिकानाल सुरति जो ध्यावे । खोलि केवारी तब बाहर आवे ॥
 पखुरी सुरति कमलको जानी । तासे सुरति करो पहिचानी ॥

साखी-सतगुरु भेद बतावई, तब पावे यह द्वार ।

कहै कबीर धर्मदाससो, निश्चय वचन हमार ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास चरनन चितलावा । अगमागम तुम मोहि बुलावा ॥
 आगे गम्य मोहि देहु लखाई । अब मैं गहों सुरति बनाई ॥
 यह तो ठीक चिन्हेउ मैं भाई । तुम परताप गम्य हम पाई ॥
 अब आगेकर कहो बखाना । जहाँ मूल शब्दका पावों ध्याना ॥
 जेहिते शब्दमें जाय समाई । तवन गम्य मोहि देहु लखाई ॥
 भाषो मूल जाओं बलिहारी । मूलशब्द पुनि गहों सम्हारी ॥
 सुरति कमल गम तुम भाखो । सुरति सम्हार अपने चितराखो ॥
 सुरति कमल सुनब मैं साहेब । बिहंगम डोरि गही चितलायब ॥
 अब आगेका भाषो राहा । हम अजान का जानो थाहा ॥
 तुम्हरे जनाय हम जानब भाई । तुम जानो सो करो बनाई ॥

साखी-समरत्थ आगे भाषो, मैं कहूँ सुरति सम्हार ।

सकल पसारा मेटिके, उतरूँ भवजल पार ॥

सतगुरु तब दया भई, पावों पद निर्वान ।

आगे गम्य बतावहु, सतगुरु वचन परमान ॥

सद्गुरु वचन-चौपाई ।

सुरति कमलके आगे भाखों । तुमसे गोप कछु नहिं गखों ॥
 सुरति कमल होय निकसो भाई । विहंगम डोरि गहो चितलाई ॥
 विहंगम डोर दहिने दिशि जाई । तुमसों भेद कहों समझाई ॥
 सुरति कमलके कहों ठिकाना । आगे है योजन परमाना ॥
 अक्षय वृक्ष तहाँ लागा भाई । दवना मरुआ वरनि न जाई ॥
 बेलि चमेली बास सुवास । बास सुवास किया प्रकाशा ॥

साखी-दवना मरुआ गुलाब है, गुलाब चमेली बास ।

तहवाँ अक्षय वृक्ष है, वरणों वाम सुवास ॥

चौपाई ।

अक्षय वृक्षके वरणों अंगा । श्वेत स्वरूप तहां देखो रंगा ॥
 श्वेत स्वरूप तहां देखो भाई । ऐसा भेद अगम अर्थाई ॥
 ऐसा अलख लखे जो कोई । जरा मरण रहित सो होई ॥
 बिहंगम डोरि तहाँते आई । अकल कलामें जाइ समाई ॥
 श्रवण ऊपरका कहां ठिकाना । झींगुर शब्द करै घमसाना ॥
 दहिने स्वरपर ताकर ठाऊं । यही निजभेद मैं तुम्हें बताऊं ॥
 अर्ध कमल उर्धमुख रहई । तहवां मूल शब्द उच्चरई ॥
 धर्मदास तुम करहु संभारा । अकल कलामें शब्द उचारा ॥
 ताकी सुगति धर्मनि तुम धरहु । होय धर्मनि यहि शब्दे गहरहु ॥
 तौन शब्द मैं दीन बताई । उरें डोरीले आगे जाई ॥
 सबै दिशि लागी है ताही । यहि डोरी गहि मिलहु वाही ॥
 बिहंगम डोरी शब्दमें लागी । झींगुर शब्द ऊबे धन जागी ॥
 अकल कमल है श्वेत स्वरूपा । ताहि जोतिका कहां निरूपा ॥
 अकल कमलका भाषों लेखा । छत्तीस पँखुरी ताहि हम देखा ॥
 झलके मोति वरणि नहि जाई । चहुँ दिशि ज्योति चमके आई ॥
 छत्तीस पखुरीका विस्तारा । आप आप मुख राग उचारा ॥
 तेहि भीतरका कहां हवाला । आभा उठि तहां चमके लाला ॥
 होय उजियार दीपकके टेमा । पावो जाय सुरतिके प्रेमा ॥
 आभा उठे सो वरणि न जाई । तुमकई दीन अलख लखाई ॥
 भीतर कमल होय उजियारा । तहां मूलशब्द करै झनकारा ॥
 समगै मोती लाल अरु हीरा । तहवां बैठे सत्त कबीरा ॥
 मोती झालर ऊपर छाजे । भीतर शब्द जो मूल बिराजे ॥
 अक्षय कमल जहँ तार ठिकाना । गुह्यकमल जहां होय निदाना ॥
 तेहि आभा वरणि न जाई । साठ भानुकी ज्योति छपाई ॥

अस उजियार तेहि कमलमें होई । ताका मरम न जाने कोई ॥
 अरिष्ट कमल है भेद निनारा । देखों जाइ सकल उजियारा ॥
 वोहि ठेकान सुरति करु ध्याना । तहाँ गुप्त होय जाय समाना ॥
 एह ममान जो बैठे जाई । हो धर्मनि तोहि देउ लखाई ॥
 अकह कमल तहां प्रकाशा । ताहि महुँ निःअक्षरका बासा ॥
 दुइ कमल मुखही मुख जोरा । तेहिमा शब्द करै घनघोरा ॥
 गुप्त नाम गुंजार तहँ देख्यो । मूलशब्दकी जड़ तहँ पेख्यो ॥
 गुंजार अकह कमलमें आवे । मूलशब्द झंकार सुनावे ॥
 मोतीवरण होय उजियारा । फूटी छूटे अगरीकी धारा ॥
 छूटत अगरी धार तहँ भारी । समे विलोय में कहीं बिचारी ॥
 सुरति संजोय तहँ पिवै अघाई । जात तस दूर होय भाई ॥
 अकह कमलमें करो पैठारा । पीवो जाय अगरीकी धारा ॥
 झमकत अगरी तहां निज मूला । उनसम तुल्य नहीं कोइ तूला ॥
 यहि निज जपु अजपा जापा । पहुँचो लोक मिटे संतापा ॥
 बरषे तहां अगरीकी धारा । सुरतिनाल तहां करो अहारा ॥
 जीवतही तहां रहो समाई । यह निज दीन्हों वस्तु लखाई ॥

साखी—कहै कबीर धर्मदाससे, यही वस्तु निजसार ।

यही वस्तु जो जानिये, उतरे भवजल पार ॥

इति श्रीग्रन्थ कायापांजी सम्पूर्ण ।





सत्यमुक्त, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
मुनींद्र, करुणामय, कवीर, सुरति योग संतान,
धनी धर्मदास, चूराभणिनाम, सुदर्शन नाम, कु-
लपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र
नाम, दया नामकी दया वंश-
व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

षड्विंशतिस्तरंगः ।

अथ पञ्च मुद्रा प्रारम्भ ।

सुक्ति वचन ।

सुक्ति कहें सुनो गुरुज्ञानी । आगम भेद तुम कहौ बखानी ॥
सकल सृष्टिकी उतपति भाखौ । मोसों गोय कछू जिन राखौ ॥
ब्रह्म जीव कैसे उतपानी । सोई भेद गुरु कहौ बखानी ॥
मुक्त भेद गुरु देहु बताई । जाते हंसा लोक सिघाई ॥

योगजीत वचन ।

योगजीत तब बोलें बानी । सुकित सुनौ आदि सहिदानी ॥
जाके मर्म ना जाने कोई । तुमसों भाष कहीं मैं सोई ॥
उतपतको सब भेद बताऊँ । अगम निगम सब तुम्हे लखाऊँ ॥
साखी-ज्ञान पंचमुद्रा कहीं, मूलज्ञान को सार ।

ऋषि मुनि देवनको मता, ताते अगम अपार ॥

चौपाई ।

प्रथमहि मुद्रा खेचरी कहिये । सो स्थान गगनमो लहिये ॥
धूप बरण तहां लखो प्रकाशा । चेतन ब्रह्मको तामें वाशा ॥
तत्त्वमाहे विचित्र है सोई । कामधेनु तहां कहिये जोई ॥
पुष्टप प्रकाश तहां विजुली देखा । झिल मिल जोत तारागण देखा ॥
रक्तवर्ण तहां सूर्य लखाई । प्रथम आकाशको भेद बताई ॥
चाचरीमुद्रा नासिका अस्थाना । उतंग विदको है तहां ध्याना ॥
तहां नाकाश गगन है बासा । बिजुली रूपरेख प्रकाशा ॥
मणिगण गतन मुक्तामणि हीरा । सोहंग रूप पवन तहां धीरा ॥
नासा अग्र करे तहां मेला । पवन सिंधुमें दीजे हेल ॥
तासों हंस लीन होय जाई । निःअक्षरसो जाय समाई ॥
चाचरी मुद्रा दियो बताई । ताको भेद कहीं समुझाई ॥
भोचरीको स्थान लखाऊँ । नकाश गगनको भेद बताऊँ ॥
मनबुद्ध चित तहां होत हुलासा । तहां योग कीजे प्रकाशा ॥
चितचेतन तहां झिलमिल देखा । नील बरण पवनकी रेखा ॥
तहवां कोट सूर्यको तेज । झोन महलमों सुखमन सेज ॥
तहां गगनमो होत अनन्दा । तहां उदित है पूरण चन्दा ॥
तामो अलख ब्रह्माको कहिये । जासों भेद मुक्तको लहिये ॥
तेहिसों ध्यान लगावै कोई । अमी बुन्द तहां चाखै सोई ॥

अगोचरीको अब कहो निवासा । तासों कीजे योग प्रकाशा ॥
 सुर्तनदी तहां उठे तरङ्गा । झालर भेरी शंख मृदंगा ॥
 किकिन चिचिन किंगरी बैना । गरजनिशान धुनधुन सुत्रसेना ॥
 शून्य महलमों बैठे जाई । दशोंद्वार तब बन्द कराई ॥
 यह विध ध्यान गगनमों करई । सत्तर बाजा तब सुन परई ॥
 अनहद नाद सुने जो प्राणी । उपजे महासुखके खानी ॥
 सतगुरु कहै सांच सोई योगी । तहां मरण मगन रमावत भोगी ॥
 अगोचरी मुद्रा कहा प्रकाशा । ताको योग युक्तकी आशा ॥
 उनमुनि मुद्रा महद अकाशा । अलखपुर्प तहां कीन्हों बासा ॥
 ब्रह्म प्रकाश तहां अण्ड न पिण्डा । लोकालोक नहीं ब्रह्मण्डा ॥
 ब्रण अब्रण जात नहीं पाती । नहीं तहां दिवस नहीं तहां गती ॥
 तामों सरवर गहिर गँभीरा । जाके आदि अन्त नहीं तीरा ॥
 ज्ञानी योगी जप तहां लगा । भयो अनन्द सकलो भ्रम भागा ॥
 तामो लीन रहै जो कोई । गुप्त मनोरथ पावै सोई ॥
 योग जीत कहो भेद अपारा । विरला साधू करे विचारा ॥
 खेचरी चाचरी भोचरी जानी । अगोचरा उनमुनि कही बखानी ॥
 उनमुनि लागी योगपर निद्रा । सुख समाज जहां परम अनन्दा ॥
 यह प्रकाश उनमुनिमों कहिये । कछुक भेद पुनि तामों लहिये ॥
 पञ्च मुद्रा और पञ्च अकाशा । पंच ध्यान और पञ्च प्रकाशा ॥
 पञ्च वर्ण और पञ्च हैं वेदा । पञ्च तत्त्वके पञ्च हैं भेदा ॥
 पञ्च मंदिर औ पञ्च हैं द्वारा । पञ्च रूप औ पञ्च अहारा ॥
 पञ्च इन्द्रि औ पञ्च हैं स्वादा । पञ्च विद्या औ पञ्च हैं नादा ॥
 पञ्च हैं आसन पञ्च हैं योगी । पञ्च मंदिर औ पञ्च हैं भोगी ॥
 पञ्च सक्त औ पञ्च हैं सीउ । पञ्च कर्म औ पञ्च हैं जीउ ॥
 पञ्च पृथ्वी औ पञ्च हैं नीग । पञ्च तेज औ पञ्च समीग ॥

पञ्च लिंग औ पञ्च हैं पूजा । पञ्च एक पञ्च है दूजा ॥
 पांचों आवें पांचों जाई । पांचों मरें पांचोको खाई ॥
 पांचों सुक्षिम औ पांच अस्थूला । पांच डार औ पांच हैं मूला ॥
 पांच पाप औ पांच हैं पुत्रा । पांच वस्ती और पांच हैं सुत्रा ॥
 पांच पांच पांचों सब भवा । पांच स्वामी और पांच हैं सेवा ॥
 पंच गुरु और पंच हैं चेला । पांच भाव और पांच हैं मेला ॥
 पञ्च छुद्राका कहां विचारा । ताको योगी करे सम्हारा ॥
 चार छोड़ पांचो करे बासा । ताने पांचका कहो प्रकाशा ॥
 पांचों मुद्रा उनमुनि कहिये । तासों भेद मुक्तिको लहिये ॥
 ब्रह्म प्रकाश तहाँ पूरन चन्दा । रैन दिवस नहिं सहज अनन्दा ॥
 दुतिया भाव तहाँ नहिं काया । तहवां नहीं धूप और छाया ॥
 हम तुम कर्म भ्रम नहिं दोई । तहां सिलान ब्रह्म सो होई ॥
 सहज शून्यको लखे जो भेवा । आप ही कर्ता आप ही देवा ॥
 प्रथमही आपुपुर्ष विस्तार । तहांते भयो ब्रह्म आकारा ॥
 आकारते अहंकार उपजाई । ताते बहु विस्तार बनाई ॥
 सोहं स्वासा पुर्ष उचाग । तहांते भौ अक्षर ओंकारा ॥
 पांच ब्रह्मकी उत्पत्ति भाषौ । तुमसों गोय कछु नहीं राखौ ॥
 अकास ब्रह्मको भास बताऊँ । वायु ब्रह्मको तहवां लाऊँ ॥
 पुन है तेज ब्रह्मकी बानी । जलकी बहुरि कहौं उतपानी ॥
 फिर पृथ्वीको भास लखाऊँ । प्रथम ब्रह्मको भेद सुनाऊँ ॥
 अविगत आदि ब्रह्मको भासा । ताको भेद कहौं प्रकाशा ॥
 प्रथमैं नाम आकाश कहाई । दुतिये गगनाकाश बताई ॥
 फिर रकाशको नाम सुनाऊँ । चौथे गगनसकाश लखाऊँ ॥
 पांचें महद अकाशकी बानी । पञ्च अकाशमें कहौं बखानी ॥
 अब सुन कहौं पञ्च अस्थाना । सकित तुमसों कहौं बखाना ॥

मुखके अग्र खेचरी बासा । ताको ध्यान जन करे अकाशा ॥
 नासा अग्रत्रिकुटी अस्थाना । चाचरी मुद्रा तहां बखाना ॥
 चक्षु अग्र भोचरी जाना । उर्ध्व अकाशको है तहां ध्याना ॥
 श्रवन अग्र अगोचरी थाना । सहज शून्यको है तहां ध्याना ॥
 तिलकपाट उनमुनी कहीज । महाशून्य ध्यान तहां कोजे ॥
 प्रथमहि खेचरीक मुद्रा कहिये । धूमवरण रंग तहां लहिये ॥
 पीतवर्ण तहां देखे जाई । अकह रूप तहां रहो समाई ॥
 औरो वण रक्त लख आई । कामधेनु तहां देखो गाई ॥
 कल्पवृक्षकी तहवाँ छाया । नहीं तहां काल नहीं तहां काया ॥
 तहां समाध लगावे जाई । अमी बुंद तहां चाखे भाई ॥
 ताकर पीबत अमर होइ जाई । सोई भेदमें वरण सुनाई ॥
 दुतिये चाचरी मुद्रा बखानी । नासा ध्यान तासको जानी ॥
 तहां उत्तंग ब्रह्मको देखा । हंस रूप तहवाँ पुन पेखा ॥
 मणिगण रतन बिन्दको बासा । कर्तारूप पुरुष प्रकाशा ॥
 जगमग ज्योति देखिये तहिया । विन शशि सूर उजैरो जहिया ॥
 चहुँदिश दामिनि दमके आई । चन्द सूर तामों छपजाई ॥
 इतना रूप चाचरी जानी । ताको भेद कहां प्रवानी ॥
 त्रितिये भोचरी मुद्रा कहिये । अष्ट अंग पुन तामों लहिये ॥
 मन बुध चित अहंकार न माया । ममता काम इर्षकी छाया ॥
 तेज पुञ्ज तहां झिलमिल देखा । सूक्ष्म अस्थान तहां पुन पेखा ॥
 चित चेतन्य तहां पुन दोई । तामों मिले परमपद सोई ॥
 भोचरी मुद्रा कहि समझाई । ताको मर्म कोइ ज्ञानी पाई ॥
 चौथे अगोचरी मुद्रा जाही । महाशब्द धुन उपजे ताहीं ॥
 नाना ताल बैन मृदंगा । यंत्र ढोल सहनाई अंगा ॥
 रावाब किंकिन झालरी बाजा । नभेरी चिचिन शंखधुन गाजा ॥

मेघनाद गजनी तहां कहिये । शंख शब्द धुन तामों लहिये ॥
 बाजासुने सूष्य तब होई । काम क्रोध मद सब गहि खोई ॥
 लोभ मोह तज पावे सोई । प्रवर्त छोड़ निखर्त जो होई ॥
 तमो सतो रजो गुण विसरावै । आगे रूप दर्श तब पावै ॥
 अगोचरीको अब कहेउ उपाई । योगी कर्म महा सच पाई ॥
 पांचे मुद्रा उनमुनि जानी । ताकर भेद अब कहों बखानी ॥
 उनमुनि देश लखे जब जाई । अमर वस्तु तब भापे आई ॥
 ब्रह्मअखण्ड देखिये जाई । ब्रह्मरूप तब भापे आई ॥
 श्वेत पीत श्याम नहि सोई । अरुण सबुजतें न्याग होई ॥
 रूप सरूप हृद बेहृद नाही । चारो बानि खानि नहीं ताहीं ॥
 ब्रण अब्रण काया नहि माया । युग बैदनकी तहाँ न छाया ॥
 षटदर्शन पाखंड ना तहाँ । बावन अक्षर अकार न जहाँ ॥
 नौ षट चार अष्टदश नाही । पांचो तत्त्व धाम नहि ताहीं ॥
 मन बुध चित अहंकार नावासा । काल कर्मको नहीं प्रकाशा ॥
 तहाँ ध्यानधर तारी लावै । सोई मूल परम पद पावै ॥
 उनमुनि सिखर बहुर चढ़जाई । जहाँकी गम्य देव नहि पाई ॥
 नहि तहाँ काल नहीं तहँकाया । नहीं तहां प्रमता मोह न माया ॥
 चन्द सूर तागगण नाही । दिवस रैन तहाँ धूप न छाहीं ॥
 पिंड ब्रह्मांडको तहाँ न लेखा । केवल पागब्रह्म तहाँ देखा ॥
 अलखरूप तहाँ अबिगत सोई । सबके परे ध्यान वह होई ॥
 तासों ध्यान लगावे प्राणी । असी चारके छूटे खाणी ॥
 अब वेदनको बास बताऊँ । ताको भेद अब वर्ण सुनाऊँ ॥
 जिह्वा अग्र ऋग्वेदको वासा । नासा अग्र यजुर प्रकाशा ॥
 श्रवण अग्र शाम सुति कहिये । चक्षू अग्र अथर्वण लहिये ॥
 अन्य अग्र सोहंग प्रकाशा । तहवाँ सुसमे वेद को बासा ॥

वेदनके अस्थान बताई । अब इंद्रिनके स्वाद लखाई ॥
 लिंग इंद्रि कामिन सो नेही । जिह्वा षट् स्वाद तो लेही ॥
 नासा गंध सुगंध अघाई । चक्षु इंद्रि रूप लोभाई ॥
 श्रवण स्वाद मधुर धुन बानी । ये पांचोंके स्वाद बखानी ॥
 पृथी अस्थूल ऋग्वेदकी बानी । नीर अस्थूल जजुर पहिचानी ॥
 वायु अस्थूल साम सुति कहिये । तेज अस्थूल अथर्वण लहिये ॥
 अनहद अस्थूल सोहंगकी बानी । सुसम देवताको पहिचानी ॥
 खोजे ताहि मुक्त तब होई । सुसम बेद सम और न कोई ॥
 वेद अस्थूल कहा समझाई । आसन योगी भेद बताई ॥
 पृथ्वीरूप जहाँ आसन जाना । जीवरूप योगी पहिचाना ॥
 पानीरूप जहाँ आसन कहिये । हंसरूप योगी तहाँ लहिये ॥
 तेजरूप जहाँ आसन जानी । चेतनरूप योगी पहिचानी ॥
 बायेंरूप है आसन जहिया । निराकार योगी है तहिया ॥
 आकाश रूप आसन प्रवाना । निरंजन योगी जहाँ बखाना ॥
 आवागम अब भेद बताई । तुमसो सुकित नाहि दुगई ॥
 जीव पृथी मिल आवै जाई । मिल पृथी पुनि बहुरि सिधाई ॥
 हंस रूप जल मिलकै आवै । बहुर नीर मिल घरहि सिधावे ॥
 चैतन तेज मिल आवै सोई । बहुर तेज मिल तहाँ सगोई ॥
 निरालंब बाये मिलि आवै । बहुर बाये मिल गृहे समावे ॥
 निरञ्जन मिल आकाशको आवै । बहुर गगन मिल उलट समावे ॥
 आवागम मैं दीन बताई । जन पहुँचनको भेद लखाई ॥
 प्रथम पृथीको जल उपजावे । सो जल बहुर पृथीको खावे ॥
 जलकी उत्पत्त तेज सो होई । भक्ष तेज पुन जलको सोई ॥
 तेजको बाये रूप उपजावे । उलट बाये पुन ताको खावे ॥
 बायें रूप अकाश उपजाई । फिर अकाश पुन ताको खाई ॥
 आकाश शून्यते उत्पत्त जानौ । बहुरि शून्यमें जाय समानौ ॥

पृथी जीव गृहे कहीं प्रकाशा । गुदा द्वारमों कीन्हो वासा ॥
 पानी हंसको गृहे बताई । ललाट अधरमों बैठक पाई ॥
 तेज चेतनको धाम बताई । पीत चक्षुके द्वार रद्दाई ॥
 निरालम्ब बायेको थाना । नाभी नाशिक द्वार समाना ॥
 आकाश निरंजनको प्रकाशा । श्रवन द्वार ब्रह्मांड है वासा ॥
 पांचोंके गृह वर्ण सुनाई । रंग अहार कहीं समुझाई ॥
 पृथ्वी पीतवर्ण उच्चार । सो तो जीवको कहीं अहारा ॥
 पानी श्वेतवर्ण है भाई । सो तो अहार हंसको आई ॥
 तेजको रक्तवर्ण पहिचाना । सो तो अहार चेतन को जाना ॥
 बायेको सवुजवर्ण है भाई । निरालम्बको भक्षण आई ॥
 अकाश नीलवर्ण पहिचानी । निरंजनको अहारसो जानी ॥
 रंग अहार कहेउ समुझाई । पृथ्वी पंचके नीर बुझाई ॥
 पृथ्वी नीर पुत्र है भाई । हाड पृथीको बिंद कदाई ॥
 नीर पृथीको श्रोणित अंशा । पसीना त्वचा पृथीको वंशा ॥
 रोम पृथीको वंश कहाई । पृथी नीरको भेद लखाई ॥
 पृथी बिमल गुन कहिये भाई । अब पृथी गन वर्ण बताई ॥
 तेज तमोगुणको पहिचाना । बाये गन्धगुण लखो सुजाना ॥
 अकाशअलखगुण जानहु भाई । पांचोंके गुणवर्ण सुनाई ॥
 अब प्रकीर्त पचीस बताऊँ । पांचों तत्त्व विभाग लखाऊँ ॥
 हाड चाम मांस रोम लखाई । नाटिका पृथी प्रकीर्त बताई ॥
 रक्त पित्त कफ स्वाद बखाना । स्नायुप्रकीर्तजलतत्त्वको जाना ॥
 भूखप्यास मुख प्रभा जम्हानो । आलस निद्रा तेज पहिचानो ॥
 धावन कूदन बलकर भाई । परसन सकुचन पवन बताई ॥
 लोभ मोह हंकार भे जाना । बिंद अकाश प्रकीर्त बखाना ॥
 पांच पचीस अंग कहि दीन्हों । तासु मर्म कोइ बिरले चीन्हों ॥

प्रथमहि जीवरूप पहिचानो । प्रथमें ताके चेला जानो ॥
 औ पुन हंसरूप है भाई । पानी चेला तास बताई ॥
 चेतनरूप गुरू है सोई । चेला तेज तासुको होई ॥
 निगलंब गुरू पहिचानो । वाय तासको चेला जानो ॥
 अलख निरंजन गुरू बखाना । चेला आकाश तासको जाना ॥
 गुरू शिष्यको भेद बताई । अब तत्त्वनकी परष लखाई ॥

छंद-चौकोर मंद और शुद्धपुरी धरनी है सोई ।

नीचे शीतल मंद चले जलको तत होई ॥

तेज तत्त्व जो ऊंच आगनकी आइसु होई ।

दहिने बांये चले बांये तत्त्व जानो सोई ॥

सबुजके मध्य सुखमना पवन गगनको जानिये ।

आकाश नाम तासों कहि पांचों तत्त्व बखानिये ॥

नाभी गंध समान पवनको अंश बखानो ।

हृदे माही प्राण अगिनको अंश सो जानो ॥

कंठ बसे आपान अंश तेहि जलको जानो ।

गगन बसे उद्यान अंश आकाश बखानो ॥

सब देहीमों व्यानहै अंश पृथ्वीको जानिये ।

पंच प्राण ये जानिये अंशहीते पहिचानिये ॥

चौपाई ।

पंचप्राणकी संध लखाई । अब उनमुनिको भेद बताई ॥

मुद्रापांच प्रकट में भाषा । तामह श्रेष्ठ उनमुनि राखा ॥

चारोंके परे उनमुनि कहिये । अलखरूप पुनि तामों लहिये ॥

सोई ब्रह्मज्ञान कहलावै । धरे ध्यान तहां अमृत पावै ॥

पावे साध अमीरस पावै । सो योगी जग युगयुग जीवै ॥

ना फिर आवै ना फिर जाई । अखंड मंडलमें रहे समाई ॥

ताको जरा मरन नहिं होई । परम तत्त्वमें रहे समोई ॥
योग जीत कहु ज्ञान अपारा । यह मारग है सत्त बिचारा ॥
सुकित वचन ।

सुकित कहैं सुनो गुरुज्ञानी । मुद्रा पंच तुम कही बखानी ॥
और कथा एक पूछो तोही । सो समुझाय कहो प्रभु मोही ॥
कायाभाहे कमल जो होई । तेहि स्थान सुनावो सोई ॥
कौन कमलकै पखुरी जाना । कौन देव तहां कीन्हों थाना ॥
कौन कमलसों स्वासा आवै । कौन कमलमों जाय समावै ॥
कौन कमलसों होय गुजारा । कौन कमलसों करे उचारा ॥
केतिक स्वासा आवे जाई । भिन्न भिन्न सब लेख बताई ॥
योग जीत वचन ।

हे सुकित में तुम्हें लखाऊं । कमलनको प्रमान बताऊं ॥
प्रथमहि कमल चतुरदल कहिये । देवगणेश पुन तामों लहिये ॥
रिद्धसिद्धि जहाँ सत्त उपासा । तहाँ जा पूछै सो प्रकाशा ॥
षटदल कमल ब्रह्माको बासा । सावित्री तहाँ कीन्ह निवासा ॥
षटसहस्र तहाँ जाप बखाना । देवन सहित इंद्र अस्थाना ॥
अष्टदलकमलहरिलक्ष्मी वासा । षटसहस्र तहाँ जाप निवासा ॥
द्वादश कमलमों शिवको जाना । षटहजार जाप बंधाना ॥
तहाँ शिव योग लगावैं तारी । पारवती संग सहित विचारी ॥
षोडश कमल जीव मन वासा । एक सहस्र जाप प्रकाशा ॥
त्रैदल कमल भारथी वासा । सोतो उज्ज्वल कमल निवासा ॥
एक सहस्र जाप तहाँ कीजै । यह संकरूप जाय तहाँ दीजै ॥
दोय दल कमल हंस अस्थाना । तामह परम हंसको जाना ॥
एक सहस्र जाप प्रकाशा । कर्म भ्रमको है तहाँ नाशा ॥
सहस्रदलकमलमों झिलमिलजाना । ज्योति सरूप तहाँ पहिचाना ॥
ताहै रंगहै अलख अपारा । अलख पुर्ष है सबते सारा ॥

नवें कमल आदको जानो । जाते निरगुण पुर्ष बखानो ॥
 एकइस हजार छैसे जाप कहिये । सो सब पुर्ष ध्यानमों लहिये ॥
 अष्ट कमलको भेद बताई । और ज्ञान अब भाषो भाई ॥
 स्वासाको प्रमाण अब भाषों । तेहि प्रभाव प्रकटकर राषों ॥
 अब स्वासाको भेद बताऊं । जाको मर्म कोई नहिं पाऊं ॥
 अमी अखंडते वर्षे धारा । तहांते स्वास होय गुजारा ॥
 निसवासरको जाने मूला । स्वासा सार शब्दसमतूला ॥
 दशयें घरते स्वासा आवै । कछुना भी कछु अलख चढ़ावै ॥
 निस दिन चले स्वासाकी धारा । सातसे आगर साठि हजार ॥
 अमी कमल अमान सो नाला । अढ़ाई दल पखुरी रिसाला ॥
 तहांते चले पवनकी धारा । स्वासा माहे शब्द गुजारा ॥
 उनचालिस हजार एकसे आवै । एतिक चिकुर द्वारसो धावै ॥
 हृदे कमल होय स्वासा आवै । एकइस हजार और छैसे धावै ॥
 एता जाप तहां प्रवाना । एकइस हजार और छैसे जाना ॥
 एतिक स्वासा हृदे ले आवै । शिन बाहिर शिन भीतर धावै ॥
 दुसरा कमल है झिलमिलमाही । झलके जोत अधर धुन ताही ॥
 सहस्र पखुरी कमल अनूपा । तहां बसे मन जीत सरूपा ॥
 ताहे कमल पर बाजा बाजै । सत्तर बाजा तहां बिराजै ॥
 तहां घरनी घरियार बजावे । घरी घरी टंकोरा लावे ॥
 छैसे औ पचहत्तर स्वासा । एतिक एक घरी प्रकाशा ॥
 एतिक स्वासा कमल युगमाही । तब घरनी घरियार बजाही ॥
 या विधि चार टंकोरा ठोकै । राहु केतु संग ब्यालि न रोकै ॥
 पहर एक करे धुन पूरा । ग्रहण गिरासे शशि औ सूर ॥
 गहन गिरा सत निसरे स्वासा । रवि शशि राहु केतु प्रकाशा ॥
 तेहि संग एक सापनी रहई । घरीघरी वह जीवको गहई ॥
 स्वासा सोरह ग्रहण लगावै । छठे मास तेहि काल सतावै ॥

स्वासा परख घरीकी राखे । जो दम चले सो आगम भाखै ॥
 सत्ताइससोस्वासा चले जवही । पहर टंकाग मारे तबही ॥
 एतिक स्वासा पहर प्रवानी । घरी चारमों गजर बन्धानी ॥
 आठ पहर छ घरी बजावै । ठोके गजर गहर नहिं लावै ॥
 चार घरी चारो युग मूला । चार पहर चारो अस्थूला ॥
 चारो युग एक पहरके माही । चारो युगकी वर्ते छाही ॥
 प्रथम पहर सतयुग प्रवाना । ताकर प्रथम घरी बंधाना ॥
 सतयुगमें युग चार अपारा । चारों युगके नाम निनारा ॥
 प्रथमह सतयुग रोपो थाना । चारो युग तेहि माहि समाना ॥
 सतयुग प्रथमहिघरी उतपानी । किलक नामयुग ताहि बखानी ॥
 किलक जगकी स्वासा सारा । छैसे पचहत्तर स्वास सुधाग ॥
 एतिकस्वासाकिलक युगमाही । पूछै जीव अछैकी छाहीं ॥
 वीतत घरी गजर घहराई । काल टँकोरा मारे धाई ॥
 या युग अन्तकी आवे घरी । ग्रासे नागिन सनमुख खड़ी ॥
 प्रथम किलकयुग होय संघारा । पीछे कमतयुग करे पसारा ॥
 सतयुग घरी दूसरी आवै । तेनिक स्वासा कमत युगपावै ॥
 जवे कमत युगकरे हंकारा । उतपत थोरी बहुत संघारा ॥
 कमत युगकी स्वासा जानो । छैसे पचहत्तर स्वासा बखानो ॥
 एतिक स्वासा कमतयुग माही । गुण औगुण सब निखें ताही ॥
 बीते कमन कमोद युग आवै । तीसरी घरी बासना धावै ॥
 आवागवन विचारे जोई । युग कमोद सुख पावे सोई ॥
 तिसरी घरी कमोदकी आवै । तब कमोद युग सुख दिखरावै ॥
 युग कमोद अमल जब आवै । दुखी सुखी नर सब सुख पावै ॥
 युग कमोदको प्रलै होई । दुखी सुखी जाने सब कोई ॥
 तबही होय सूर संघारा । महाविरोध उपजे संसाग ॥

चन्द सनेह होय जो हीना । महासूल तन होय मलीना ॥
 श्वासा घरी सातसे भारी । युगकमोदकी कथा निनारी ॥
 युगकंकवत होय पैसारा । चौथी घरी क्रोध अधिकारा ॥
 ताकी घरी निकट जब आवै । सतयुग अंत कंकवत पावै ॥
 सतयुग अंत होन नहिं पावै । युग कंकवत आन समावै ॥
 युगकंकवत काल दुखदाई । काया कहर गिरासे आई ॥
 युगकंकवत कालकी बाजी । कलह विकार सब जगमें साजी ॥
 युगकंकवत महाबल योधा । अंतकाल सतयुगसों क्रोधा ॥
 सतयुगअंत कंकवत माहीं । अंतकालकी व्यापे छाहीं ॥
 युगकंकवत मोहकी छाहीं । काम क्रोध ममता लपटाहीं ॥
 अंतकाल सतयुगके भयऊ । चारो युग परले तर गयऊ ॥
 चारों युगका भेद बतावा । अगम निगम सब भाष सुनावा ॥

साखी—एके युगके बीतते, चारों गये विनास ।

एक नाद चारों युग खायो, सतयुग कीन्हो ग्रास ॥

किलक कमोद चंदके नेहा । कमत कंकवत सूर सनेहा ॥
 भये युग अंत एक संगचारी । चार शब्द एक नाद सँवारी ॥
 एक नाद एक पहर कहावै । चार घरी एक माहि समावै ॥
 चार घरी चारों युग बीतै । शब्द नाद रवि शशिघर जीतै ॥
 सतयुगको तब भयो विनाशा । त्रेतायुगको भयो प्रकाशा ॥
 दूसर युग तब भौ विश्वासा । दूसर पहर तत्त्व प्रकाशा ॥
 तेज लगन श्वासा अनुसारी । ताते त्रेतायुग संचारी ॥
 त्रेता युगकी पखुरी चारी । चार घरी युग चार बिचारी ॥
 जस युगअंत, सतयुगमें देखा । सोई युग त्रेतामें लेखा ॥
 जब जब अंत होय युगकेरा । तबतब नादकाल घन घोरा ॥

ब्रेता युगमों कलह अपारा । यज्ञ दान व्रत नेम अचारा ॥
 तेहि पीछे द्वापर युग आवा । काल^१ अंत तब आन समावा ॥
 अहंकार तामें अति भाखा । अब कलयुगकी वर्णों साखा ॥
 काम क्रोध और पाप अपारा । लोभ मोह यम कीन्ह पसारा ॥
 एक पहर चारों युग जाना । ताको वर्ण कहों बिलछाना ॥
 पांच तत्त्व तीनों गुण कहिये । ताते पिंडकी उत्पत्ति लहिये ॥
 अष्टधात कहिये अस्थूला । ताते रचो गर्भको मूला ॥
 शिवकी श्वासा वायु सरूपा । सक्ती गद्दे जानके रूपा ॥
 शिवको रूप शक्ति गहि लेई । तब सांचा मो जावन देई ॥
 जावन जगे तब सांचा माहीं । थाका होय रुधिरके ताहीं ॥
 तेहि थाकाकी रचना भारी । तीन लोककी विभो सवारी ॥
 महल मध्य पुनि जीव समावा । जलके भीतर महल बनावा ॥
 महलके माहि बनाये छज्जा । तामों दश कीन्हों दरवज्जा ॥
 सांचा अन्न जरे नहि कबहीं । पिंड सवारो अन्तर जबहीं ॥
 सांचा माहि दियो रंग ढारी । नख सिख शोभा बहुत सवारी ॥
 तीनों लोक रचो पलमाहीं । गढ़पति अंशतब साजा ताहीं ॥
 प्रथमहि सायेर सात सँवारा । पर्वत आठ कीन्ह अधिकारा ॥
 अठारह गंडा नदी बहाई । तामह गुप्त बहै ठहराई ॥
 अठारह सहस्र बनाये नारा । अष्टधातुले साज सुधारा ॥
 रक्त हांडको सब अस्थूला । बाढ़े लिंग सवारी मूला ॥
 आगे रचो दोइ भुज दंडा । सातद्वीप पृथ्वी नौखंडा ॥
 बहुर सँवारो दोय पग खंभा । मदन महाबल उपजो रंभा ॥
 नासा चढाय मस्तक पर लाई । सातभँवर नौनाट लगाई ॥
 उतर मेर शिर जो अस्थूला । सरवर माहि कमल बहु फूला ॥
 नाभी माहि दल चार बनाई । फूल फल बास घट छाई ॥

आठो अंग रचो क्षस्थूला । शिव शक्ती दोनों समतूला ॥
 सोई अंग शक्त सोई ईसा । एकै रूप एक समदीसा ॥
 नख सिख रचो गर्भस्थाना । सातद्वीप नौखंड बखाना ॥
 प्रथमहि ब्रह्म द्वीप निरमावा । ताऊपर बहु रचना लावा ॥
 एकद्वीप नौखंड बनाई । त्रिकुटी सात तहां निरवाई ॥
 एकद्वीपमहँ सातो नाला । सातोनाल सात हैं चाला ॥
 सरवर सात कमल है साता । रंग पांच पांचों उतपाता ॥
 त्रिकुटी मध्य एकहै कीला । तहां देखिये रंगरसीला ॥
 ता कीलामह कानी लागी । पवन सनेह आत्मा जागी ॥
 ता कीलामह लागी डोरी । खूटा लगा पवन झकझोरी ॥
 झूले मन पवन झूलावै घेरी । एक घर शून्य एक घर फेरी ॥
 खूटा होयके पवन झकोरी । इंगला पिंगला सुखमण जोरी ॥
 रविशशि पवन गहे मन जोरी । खूटा लाग पवनकी डोरी ॥
 मेर डंडपर खूटा गाड़ा । नदी तीन ताऊपर बाढ़ा ॥
 खूटातरे नदीत्रिय बहई । तीननदी विच खूटा रहई ॥
 खूटाके दहिने दिश गंगा । अति शीतल बहै नीर तरंगा ॥
 सरसनेह नीर हिय पसैं । सुर्तसनेह धनी तहँ दसैं ॥
 खूटाके है बांये अंगा । यमुना नदी बहे अतिरंगा ॥
 सुखमन सरस्वती नीर तरंगा । लहर लालच तेज विष अंगा ॥
 तहां बसे सरयू तहि साथी । रावल एक बयालिस हाथी ॥
 कला अनन्त रूप रस नाथा । बसे अधर दीखे नहि माथा ॥
 बाढी नदी दोह बिकराग । शीतल तेज बहेदोउ अधारा ॥
 तिसरी नदी गुप्त पर्वाहा । अविगत जल बहे अगम अथाहा ॥
 खूटा तरे होय नदी सिधारा । चली सरस्वती फोगि पहाग ॥
 मध्य लहर रस विषके खानी । गंगा यमुना बीच समानी ॥

त्रिकुटी संगम भयो मिलाना । भवर गुफा माधो करथाना ॥
 त्रिवेणी तट बसे सुदंगा । ताको मम लखा परसंगा ॥
 गणगंधर्व मुनि सब कर थाना । सुर नर मुनि कर बैठे ध्याना ॥
 तैतिस कोट देव मुनि भारी । यक्ष यक्षणी देव कुमारी ॥
 नागसुता अपसरा मोहिनी । चट्ट विमान सब फिरे जोहिनी ॥
 असुरपिशाच ऋषिनागजोलाइल । त्रिवेणीतट करे कोलाइल ॥
 तीनलोक जौ जीव निवासा । सोसब करो त्रिवेणी बासा ॥
 त्रिवेणी तट माधौ देवा । सब मिल करे तामुकी सेवा ॥
 ताहि प्राग होय चलो प्रवाहा । गंगासागर संगम जाहा ॥
 देश देश गंगा फिर आई । घाट घाट बहु क्षेत्र बँधाई ॥
 जहाँ तहाँ तप ध्यान लगावै । योग यज्ञ तप बहुत करावै ॥
 ऋतुबसंत प्रागको धावै । मकर नहाय बजार लगावै ॥
 अर्ध उर्ध्व बिच लागी हाटा । भीतर बाहर औघट घाटा ॥
 गर्भमाहि सब युक्ति बनाई । तीन कचहरी तहाँ लगाई ॥
 जहाँ नदी संगम पर्वाना । तहवां रचो एक अस्थाना ॥
 संगम बीच गुफा एकधारा । ताहि गुफामों सात है द्वारा ॥
 एकद्वार होय नाद सूधारै । एकद्वार होय रूप निहारै ॥
 एकद्वार होय बास बसावै । एकद्वार होय अम्र समावै ॥
 एकद्वार हो स्वाद लिवावै । एकद्वार होय न्याय चुकावै ॥
 एकद्वार होय नाद उचारा । योग जीउ यह मता विचारा ॥
 सातनाल चौदह सुरभाऊ । सातोंके हैं एक सुभाऊ ॥
 सातो सात शून्य मों बासा । सातो बसे गुफाके पासा ॥
 अनहद भेद आसाकी धारा । ताको भाषतहों व्यवहारा ॥

साखी-रचना भाषेउ पिंडकी, आसा सहित विचार ।

बिरलाजन कोइ परखि है, अलखरूप व्यवहार ॥

सुकृति वचन—चौपाई ।

सुकृति कह सुन सत्यगुरु ज्ञानी । अगम कथा कही अन्तरयामी ॥
और कथा अब मोसों भाषों । जो पृछों सो गोय न राषों ॥
हंस अवधको भेद बतावो । तास मर्म सब मोहि सुनावो ॥
आगम वरष मासषट जानो । तो कछु अपनो निजमत ठानो ॥
ताको भेद कहों समुझाई । सो मोहि सतगुरु भेद लखाई ॥
योगजीत वचन ।

सुकृति सुनो सत्त मम बानी । भिन्न भिन्न मैं कहों बखानी ॥
पांचघरी बांये सुर पाई । सोई दहिनो श्वासा चलाई ॥
दशश्वासा सुखमन जो कहिये । ताको भेद बराबर लहिये ॥
आठ पहर पिंगला सुर हालै । बरष तीसरे हंसा चालै ॥
आठ दिवस दहिनो सुर बहै । हंसा अवध वर्ष दोय रहै ॥
सोरह दिन पिंगला सुर बोलै । वर्ष एक मो हंसा डोलै ॥
बीस रैन दिन दहिनी पाई । तब पट मासमों हंस चलाई ॥
एकतिसरोज दक्षस्वरको जानो । तब दोय दिनमों हंस पयानो ॥
पांचघरी सुखमन जो हालै । पांचघरी मो हंसा चालै ॥
चन्द सूर सुषमन छपजाई । मुखसे तीजो पवन चलाई ॥
ऐसी विधि पवन चलाई । पहर माहिं हंसा चल जाई ॥

साखी—धूम मंडल दीखे नहीं, जोत न नेत्र लखाय ।

छठे मास हंसा चले, बचै न कोट उपाय ॥

छाया शीस दीखे नहीं, भुजा शिखर ना दिखाय ।

दीप बास आवै नहीं, छठै मास चल जाय ॥

गगन शब्द गरजे नहीं, नेत्र गुञ्ज छपजाय ।

मास एकके अवधमें, हंसा तन तज जाय ॥

भँवरगुफा तिल ना लखे, पुतरी जब चढ़जाय ।

पहर एकमें जानिये, हंसा तन तज जाय ॥

सुकृत वचन चौपाई ।

सुकृत कहे सुनो गुरु ज्ञानी । आगम पचें सब हम जानी ॥
और एक पूछों गुरु तोही । भिन्न भिन्नकै भाखी मोही ॥
जीव ब्रह्म कैसे प्रगटाई । सबके उपपत्त देहु बताई ॥
ताकर भेद गोय जिन गखी । सत्य सत्य सब मोसो भाखी ॥

चौतुक ।

कौन सो मन है कौन पवन है कौन शब्द है भाई ।
कौन प्राण है कौन हंस है कौन ब्रह्म ठहराई ॥
कौन काल है कौन जीव है कौन शून्य पहिचानी ।
कौन शिव है कौन निरंजन कहो सकल उत्तपानी ॥

योगजीत वचन ।

चंचल मन है श्वास पवन है शब्द शून्य पहिचानी ।
प्राण निरंतर अलख ब्रह्म है सोहंग हंस बखानी ॥
कारण काल शून्य अविनाशी जीव कर्म पहिचानी ।
शिव शक्ती करतार निरंजन ऐसा भेद बखानी ॥

सुकृत वचन ।

मन कहाँ रहे पवन कहाँ वासा शब्द बास कहाँ कीन्ह ।
कहाँ प्राण कहाँ ब्रह्म वास है हंस कहाँ है लीन्ह ॥
कारण काल केहि ठोर बसत है कहाँ शून्य ठहराई ।
जीव शीव निरंजन वासा सो मोहि देहु बताई ॥

योगजीत वचन ।

हृदे मन है नाभि पवन है अनहद शब्द को वासा ।
निरन्तर प्राण ब्रह्म ब्रह्मण्डे गगन हंस पर्काशा ॥
सकलमें काल शीव चंदा में शून्य निरूपम माही ।
सुखमन मध्य निरंजन वासा योगी देखे ताही ॥

सुक्रित वचन ।

इन्द्री नाभी तब नहीं स्वामी पवन कहा तब बासा ।
जादिन अनहद रूप नहीं तब शब्द कहाँ पर्काशा ॥
ब्रह्मांड ना तो तब ब्रह्म कहाँ तो गगन नहीं कहाँ हंसा ।
निरूपम विना शून्य कहाँ कहिये भेद कहाँ प्रकाशा ॥
आकार नहीं तब जीव कहाँ तो चन्द नहीं तब शीऊ ।
सुखमन नहीं तब कहाँ निरंजन समुझाय कहो सब भेऊ ॥

योगजीत वचन ।

इंद्री विन मन हतो निरूपम निराकारमों पवना ।
अलख रूपमों शब्द बासतो अविगतिमों तब प्राना ॥
अविनाशीमों हंसवास तो शून्य कालमों बासा ।
ओंकारमों काल बास तो ऐसा भेद प्रकाशा ॥
जीव शीवमों प्रथमो बामा शीव निरंजन माहीं ।
सबको बास प्रकट कर भाखों भेद कहाँ तुम पाहीं ॥

सुक्रित वचन ।

कहांते उतपत भयो निरंजन कहाँ शीव उतपानी ।
काल जीव कहांते प्रकटो शून्य भयो केहि खानी ॥
कहांते उतपत भये अविनाशी कहांते उतपन हंसा ।
कहांते उतपन ब्रह्मभयो है प्राण भयो कह अंशा ॥
शब्द पवन मन कहांते उतपन कहांते प्रकटो जीऊ ।
सबके उतपन मोसों भाखों केहि बिधि प्रकटो शीऊ ॥

योगजीत वचन ।

आदि ब्रह्मते भयो निरंजन तहांते प्रकटो शीऊ ।
तोन भेद तुममों कहो सुक्रित शिवते उपजो जीऊ ॥
जीवते उतपत काल भयो है कालते भयो ओंकारा ।
ओंकारते शून्य भयो है शून्यते जोत प्रकारा ॥

जोत ब्रह्मते सब प्रकारा अगम भेदको कहो विचारा ।
 अखंड रूपते भयो अविनाशी अविनाशी ते इंसा ॥
 शब्दते उतपत पवनकी है पवनते स्वांसा अंशा ॥

सुक्रित वचन—चौपाई ।

अन्तकाल जब आवे भाई । तन छूटे मन कहां समाई ॥
 पवन शब्द इंसा कहां सिधाई । अन्तकाल कहवां ठहराई ॥
 कालशून्य तब कहा समैहै । जीव शीव कहवां चल जैहै ॥
 अन्त नेरंजन कहो समाई । ताको भेद कहो समुझाई ॥

योगजीत वचन ।

तन छूटे मन जोत समाई । पवन श्वांसमें तब खप जाई ॥
 प्राण समाय शब्दके माहीं । इंसा ब्रह्ममें तब खपजाहीं ॥
 अविनाशी शिवमाहे समाई । ब्रह्म अलखमें तब खप जाई ॥
 अलख अनूपमों जाय समाना । अन्त प्रलैको भेद बखाना ॥
 उतपत सकल भाष हम दीना । ताको भेद लखो पर्वाना ॥
 सत्य सत्य यह बानी जानो । आदि वचन यह तुम निर्वानो ॥

सुक्रित वचन—चौपाई ।

हे समर्थ मैं तुम बलिहारी । खोल भेद अब कहौं विचारी ॥
 केता प्रवान लोक अस्थाना । ताको भेद कहौं निर्वाना ॥
 संख्या योजन ताकी भाखो । ताकर भेद गोय जनि राखो ॥
 कहां कौन सो पुरी रहाई । कौन अंश तहाँ आसन लाई ॥

साखी—सब उतपत तुम भाषिया, भेद कहेउ समुझाय ।

अब मन मो निश्चय भई, आगम भेद लखाय ॥

योगजीत वचन ।

साखी—योजनकी मरजाद बहु, आगे जो पर्वान ।

अंशमहित अब भाखेऊ, तिनको नाम वखान ॥

चौपाई ।

अब मैं कहौ लोककी बानी । निरगुण भेद कहौ बिलछानी ॥
 प्रथमहि कुम्भ रूप औतारा । पीछे सकल सृष्टि बिस्तारा ॥
 योजनकोट एक मुख कहिये । कोट पचास पीठ तेहि लहिये ॥
 एक कोटको मस्तक जाना । कोटकोटके अन्त बखाना ॥
 एक कोटपर नेत्र बताई । सोरा माथ चौसठ हाथ पाई ॥
 पृथीते दून कुम्भ है भाई । पूरबदिशि मुख वरन भुनाई ॥
 उंचास कोट पृथ्वी पर्वाना । ताके तरे कुम्भ अस्थाना ॥
 बहुर अष्ट दिगपाल बखाना । कुम्भ पीठपर है अस्थाना ॥
 चौसठ पुंडरीक तहां कहिये । बावन लक्षको मस्तक लहिये ॥
 छयकोट ऊँचे प्रमाना । कुम्भ पीठपर कीन्हों थाना ॥
 ऊपर कुम्भ शेषको जाना । पंद्रह कोट ताहि प्रवाना ॥
 तहां बासुककी बैठक कहिये । और वराहु तासुपर लहिये ॥
 ताकी डाढ़ पृथी ठहराई । गई प्रवानसो दीखे भाई ॥
 पर्वत अष्टपृथी पर जाना । मध्यपृथी सुमेर बखाना ॥
 सोरह सहस्र नीचे बंधाना । एता योजन तरे समाना ॥
 बीस सहस्र योजन चौरासी । चारदिशा तेहि फेर रहासी ॥
 चौरासी सहस्र योजन प्रवाना । इतना ऊँच सुमेरु बखाना ॥
 तापर चारपुरी हैं भाई । अमरपुरी पुन तहां बनाई ॥
 तहां इंद्र सुखराज कराई । तीन देव अस्थान बताई ॥
 तैंतिस कोट देवता जाना । अठासी सहस्र ऋषि प्रवाना ॥
 तहां कुबेर भंडारी कहिये । अलकापुरी नामसो लहिये ॥
 नौ पदुम नील अठतालिस । चौतिस पर्व अर्ब अनतालिस ॥
 सतावन कोट कहौ प्रवाना । पैंसठ लाख कहौ बंधाना ॥
 पञ्चानवे सहस्र और तहां कहिये । पचास एकसो योजन लहिये ॥

एता योजन कहो प्रमाना । पृथ्वी अकाशको अन्तर जाना ॥
 एता स्याम अंड पहिचानी । आगे और अबलोक बखानी ॥
 पृथीते लक्ष योजन बंधाना । तहवां सूरय देवको अस्थाना ॥
 सृजते चन्दलोकहै भाई । योजन लक्ष आगे चलजाई ॥
 चन्दलोकते आगे जाना । योजन लक्ष नक्षत्र बखाना ॥
 योजन लक्ष आगे चलजाई । ताके आगे भौम बताई ॥
 भौमके आगे बुध अस्थाना । योजन लक्ष आगे प्रवाना ॥
 बुधके आगे गुरु पहिचानो । योजन लक्षमें ताहि बखानो ॥
 गुरुके आगे शुक्र बताई । योजन लक्ष कहों ठहगई ॥
 शुक्रके आगे शनिको जाना । लक्ष योजन आगे पहिचाना ॥
 शनिके आगे अदित बखाना । योजन लक्ष कहो प्रवाना ॥
 तेहिके आगे सोम कहीजै । सोमके आगे राहु लहीजै ॥
 राहु केतु लोक अस्थाना । योजन लक्ष आगे बंधाना ॥
 तहांते लक्ष योजन प्रवाना । तहवां सप्तऋषीश्वर जाना ॥
 तेरह लक्ष ऋषिन सो भाई । आगे विधिको लोक बताई ॥
 तहांते लक्षयोजन बंधाना । महाविष्णु आगे पर्वाना ॥
 श्रीनारायण बैठे जहँवा । मूवा ऊपर पालंग तहँवा ॥
 पग अंगुष्ठ मुख दीन्हों सोई । बालरूप तहाँ कीन्हों जोई ॥
 तहाँते गोलोक कहावे भाई । राधा सती तहाँते आई ॥
 सोई नाम अचित कहावे । सच्चिदानन्द ताहि गोहरावे ॥
 इहांलग सगुणरूप बतलाई । यही चारों वेदन गुन गाई ॥
 आगेको कछु भेद न पाई । इहांलग सबही मिल गोहराई ॥
 तैतिसकोट इहांलग गावे । आगेका कछु भेद न पावै ॥
 चारमुक्तका कहे बखाना । यही रूपको करे पर्वाना ॥
 बहुते तेज उहांलग जाई । प्रले समै नाश होय भाई ॥

नौ औतार देहधर आवा । सो अचितके अंश कहावा ॥
जहांलग अंश सकल पुन देखा । तहांलग मायारूप विशेषा ॥
आगे अक्ष लोक है भाई । तहां गये फिर बहुरि न आई ॥

साखी-इहांलग सरगुण रूप है, सो हम दीन्ह लखाय ।

जग नहिं जानत तासको, निरगुण कोधौं आय ॥

सुकृत वचन-चौपाई ।

हो समर्थ तुम अगम अपाग । तुम हो निरगुणके औतारा ॥
अब आगेको भेद बताई । लोक पुर्ष सब वर्ण सुनाई ॥
जहवाँ हंस जाब टहगई । बहुरि नहीं प्रलैतर आई ॥
ताकर भेद कहो समझाई । अगम निगम सब वर्ण सुनाई ॥

साखी-सतगुरु भाषो आदिते, लोकन को पर्वान ।

केता अन्तर ताहिको, पुर्ष भेद निग्वान ॥

योगजात वचन-चौपाई ।

हे सुकृत मैं कहों बखानी । वर्णों अगम निगमकी बानी ॥
अचितलोकमें दीन्ह बताई । लोकालोक सब वर्ण सुनाई ॥
अब भाषों निरगुणको लेखा । योजन संख्या लोक विशेषा ॥
अचितके आगे लोक बखानो । तीन अंशख योजन पहिचानो ॥
सोहंगलोक तहां है भाई । आठ अंश तिनते उपजाई ॥
सोहंग पुरुष है अगम अपाग । जगर मगर जहँ है उजियाथा ॥
सोहंग पुर्षके आगे जाना । मूल नाम तहँ पुर्ष बखाना ॥
पांच असंख योजन प्रमाना । तहवाँ मूलनाम बंधाना ॥
मूलनाम तहँ आसन कीन्हा । आदि पुर्षके अंश जो चीन्हा ॥
मूलपुर्ष है अगम निसानी । तास भेद मैं कहों बखानी ॥
मूलपुर्ष ते आगे जाना । अंकुर नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
तीन असंख आगे है भाई । अंकुरनाम तहँ पुरुष रहाई ॥

ताको उग्रलोक है भाई । तहां अंकूर उदित रहाई ॥
 अंकूरलोकते आगे जाना । इक्ष नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
 चार असंख योजन प्रमानी । इक्षया पुर्ष तहां रजधानी ॥
 सोई पुर्ष कर्ता होय आवा । आदपुर्षके अंश कहावा ॥
 प्रथम पुर्षकी इक्षया आई । ताते इक्षया नाम कहाई ॥
 ताहि पुर्षको कहां ठिकाना । है सुकित तुम सत्तही माना ॥
 इक्षया आगे लोक बखानो । सोतो अंश पुर्षको जानो ॥
 नौ नील एक संख बखाना । बानी नाम पुर्ष अस्थाना ॥
 पुर्ष प्रथम बानी उच्चार । ताते नाम सर्व आकारा ॥
 ताहि पुर्षको भेद बताई । एतो आद पुर्ष है भाई ॥
 बानी नामते आगे जाना । सहज नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
 दशलाख एकसंख बखाना । सहज पुर्षको तहां अस्थाना ॥
 तहवां सहज पुर्ष है भाई । आदिपुर्षके अंश कहाई ॥
 सातपुर्ष इहांलग जाना । निरंजन अक्षर नीचे थाना ॥
 अचितसों अक्षर उपजो भाई । निरंजन अंश अक्षरते आई ॥

साखी-निरंजन और सहजलों, नौ पुर्ष प्रमान ।

आदिपुर्ष आगे कहों, जितने सब उतपान ॥

सहज अंशलगत जेतिक भाषा । सो रचना परलयतर राषा ॥
 इहांलग प्रलैको प्रमाना । आगे अक्षैलोक अस्थाना ॥
 सहज पुर्षते आगे जाई । आदिपुर्षको लोक दिखाई ॥
 सहजते एकअसंख प्रवाना । तहवां आदिपुर्ष निरखाना ॥
 तहैवा प्रलैकालकी छाया । नहीं तहां कछु मोह और माया ॥
 तहां न तीनों गुनका भेषा । ब्रह्मा विष्णु तहां न महेशा ॥
 नहीं तहां जोत निरंजन राई । अक्षर अचित तहां नहि जाई ॥
 तहां नही शिवशक्ती औतारा । नहीं तहां अक्षर ओंकारा ॥

ब्रह्मजीव नहीं तत्त्वकी छाया । नहीं तहँ दशहंद्री निर्माया ॥
 काम क्रोध मद लोभ न कोई । तहवां हर्ष सोग नहीं दोई ॥
 नादबिंदको तहां न पानी । नहीं तहँ सृष्टि चौरासी जानी ॥
 चंद सूर तारागण नाहीं । नहीं तहँ दिवस रैनकी छाहीं ॥
 ज्ञान ध्यानको तहां न लेषा । पाप पुण्य तहवां नहीं देषा ॥
 डार मूल तहां वृक्ष न छाया । जीव सीव तहां काल न काया ॥
 पवन न पानी पुरुष न नारी । हृद अनहृद तहां नहीं विचारी ॥
 यंत्र मंत्र तहां दरद न धोखा । नर्क स्वर्ग संशय नहीं शोका ॥
 श्वेत पीत सबज नहीं लाला । मोर सौर नहीं वृद्ध ना बाला ॥
 पिंड ब्रह्मांडको तहां न लेखा । लोक अलोक तहां नहीं देखा ॥
 मन औ वृद्ध पवन नहीं जाना । रचना बाहिरसो अस्थाना ॥
 आदि पुरुषको है तहां थाना । यह चरित्र एकौ नहीं जाना ॥
 हे सुकित मैं तुम्हें लखावा । निरगुणरूप वर्ण दर्शावा ॥

सुकित वचन ।

हो सतगुरु तुम आगम भाषा । वर्णेंउ पेड़ पत्र अरु शाखा ॥
 अब तुम कहो पुषको रूपा । कैसी कला है कौन सखपा ॥
 लोक प्रकाशको भेद बतावो । लोक प्रमान मोहि समुझावो ॥
 यामें कछु न राखो गोई । है समर्थ अब भाषो सोई ॥
 साखी-आदि पुरुषके रूपको, कहो भेद समुझाय ।

लोक प्रमान मरजाद सब, सो मोहि देहु बताय ॥

योगजीत वचन-चौपाई ।

प्रथम पुरुषको रूप बखानो । सो तुम रूप हृदयमों आनो ॥
 पुषअंग छबि वर्ण सुनाई । गुप्त भेद मैं तोहि लखाई ॥
 पुरुष शोभा अगम अपारा । ताको को अब बरणे पारा ॥
 कोट अनन्त योजन लौ काया । कहालग कहों तामुकी छाया ॥

कछु संक्षेप में देहें बताई । कहां कहीं कछु वर्णि न जाई ॥
 कोटि करुण युगजाय मिराई । मुख अनन्तसो वर्णि न जाई ॥
 ये कछु सूक्ष्म रूप लखाऊँ । कछु कछु शोभा वर्ण सुनाऊँ ॥
 अब मस्तकको वर्णों भेषा । मानों अनंत भानु शशिलेखा ॥
 जगर मगर मस्तक उजियाग । वर्णत बने न रूप अपारा ॥
 अब नेत्रनको कहां प्रमाना । मानो अनन्त भान शशि जाना ॥
 जिमि कोटिनदामिन लपटानी । जोत अनंतनकी जिमि खानी ॥
 वर्णत बने न ताको रंगा । कहांलग कहीं तास प्रसंगा ॥
 नासारूप कहीं प्रचंडा । मानो अत्र अनन्त ब्रह्मंडा ॥
 पोहप बास तहांते प्रकटाई । ब्राण अनंत योजन लग जाई ॥
 श्रवणरूप में कहीं बखानी । अनंत सिंध मानो समानी ॥
 ता मह कमल अनन्तन फूला । साग्या पत्र डार नहिं मूला ॥
 ताको शोभा वर्णि न जाई । कमलरूप तहां अधिक सुहाई ॥
 अब मुख शोभा कहीं बखानी । पिंड ब्रह्मांड तेहि माहि समानी ॥
 नौ शून्य जहां लग बासा । सो मुख भीतर कीन्ह निवासा ॥
 लोक अनंत देखिये ताही । सर्वाकार रूप है जाही ॥
 पुर्षरूपका वर्णों भाई । वर्णत बने न होय दिठाई ॥
 पुरुष शोभा अगम अपारा । मुख अनंत नहीं पावे पारा ॥
 चिकुर शोभा कहीं बुझाई । कोटिन रविशशि रोम लजाई ॥
 कोटिन चंद सूर प्रकाशा । एक एक रोम अनंतन भासा ॥
 पुरुष अंगका कर्गें बखाना । रचना कोट तासुमों जाना ॥
 श्वेत अकार पुरुषको अंगा । फटकवर्ण देहीको रंगा ॥
 शब्द स्वरूप पुरुष है भाई । वर्णों कहा वर्ण नहिं जाई
 जहां लग जीव बुन्द है भाई । ताकर भेद कहीं समुझाई
 जीव अनंत बुन्द सम जानो । अमी सिन्धु पुरुष पहिचानो ॥

यह प्रमान पुर्षको जाना । सो अब तनमों कहों बखाना ॥
सूक्षिम रूप गगनमों बासा । ताहि रूपको कहों प्रकासा ॥
तनभोरूप जो सूक्षिम जानो । सोई रूप बाहिर पहिचानो ॥
जो भीतर सो बाहिर कहिये । एकप्रमाण रूपसो लहिये ॥

साखी-बाहूके दशअंश कर, ताकर बिस्वा बीश ।

ताहूते सूक्षिम कहो, इम प्रकटो जगदीश ॥

लोक समानो पुर्षमो, पुर्षहि लोक समान ।

पुर्ष निरंतर लोक है, लोक पुर्षमो जान ॥

सुकित वचन-चौपाई ।

हो समर्थ मैं तुव बलिहारी । सर्व भेद तुम कही विचारी ॥
अब प्रभु कहो ध्यानको लेखा । जेहि ते रूपहि पुर्षको देखा ॥
ताको नाम मंत्र उपदेसा । सो सतगुरु अब कहो सँदेसा ॥
सोई मंत्र गुरु देहु बनाई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
करनी यागकी रहनी आशा । हंसा करे लोकमों बासा ॥
सोई नाम गुरु देहु बताई । मेरो हंस लेहु मुक्ताई ॥
और रहनी हंसनकी भाखो । मोसों गोय कछू जनि राखो ॥
कौन नेहते हंस कहाई । कौन नेहते लोक समाई ॥

योगजीत वचन ।

सुकित सुनो सत्य मम बानी । जैसी रहन हंस पहिचानी ॥
तास रहन अब वर्ण सुनाऊँ । नेह प्रेमकी जुक्त लखाऊँ ॥
जैसे सीप स्वात करे नेहा । लागी प्रीत भूल निज देहा ॥
जैसे त्रिया पुर्षको चाहे । या विधि संत ध्यान आगाहे ॥
जैसे चात्रिक बुंद पुकारा । सोई लगन संत अधिकाग ॥
जैसे बासको भँवर लोभाई । योजन एक तहां उड जाई ॥
जैसे चंद चकोर हुलासा । ऐसे संत पुर्षको आसा ॥

जैसे लोहा चुंबक लगजाई । तैसे संत ध्यान लपटाई ॥
 जैसे कनिका कपूरको धावै । ऐसे प्रीत संत लवलावै ॥
 जैसे पतंग दीपकको धावै । ऐसे संत ध्यान लपटावै ॥
 जैसे नेह बारी औ मीना । ऐसे संत नाम लवलीना ॥
 जैसे बाल बहिन महतारी । ऐसे लगन तहां संत विचारी ॥
 ऐसे प्रीत करे जो कोई । सत्यपुर्षको पावै सोई ॥
 ऐसे प्रीत गगन मन लावै । गुरुप्रतापते दर्शन पावै ॥
 और रहन में देउँ बताई । जाते बेग पुर्ष दर्शाई ॥
 आपामेट आप दर्शाई । प्रेमसिंधुमें जाइ समाई ॥
 बिरहरूप करुणा अधिकारी । लागी ज्वाल निरन्तर भारी ॥
 जगसों नेह झूठ करजाना । मनसो सब जग मिथ्या माना ॥

साखी-मनसों त्यागे जक्तकौ, जान विषयकी खान ।

मुक्ति अब मैं भाषेऊँ, राजस योग प्रमान ॥

कायासों कारज करे, सकल काजकी रीत ।

कर्म भर्म सब मेटके, सत्त नामसों प्रीत ॥

अब सुन ब्रह्म ज्ञानकी वानी । ताकर रीति लेहु पहिचानी ॥
 एके ब्रह्म सकल घट देखा । ऊँच नीच काहु नहिं पेखा ॥
 शत्रु मित्र एक कर जानै । पाप पुण्यको भेद न आनै ॥
 करै कर्म पुरुष परिवारे । अपनो करतब मन नहिं धारै ॥
 सब कछु करे पुर्ष रे भाई । अपनो शीस ना भार चढाई ॥
 सुख औ दुःख एककर जाने । इनको भाव मिथ्या पहिचाने ॥
 झूठ वचन नहिं जीव सतावै । दया भाव सबही सो लावै ॥
 इंद्रीस्वाद स्वप्न कर जानै । रूप कुरूप नाम मनो आनै ॥
 वाद विवाद न जाने प्राणी । हार जीत एक सम पहिचानी ॥
 उत्तम मध्यम मर्म न जानै । कतारूप सकल पहिचानै ॥

जात वर्ण नाही कछु मान । चार अंग एक दृष्टि समानै ॥
जहां लग दृष्टिपरे जो कोई । इच्छा पुर्ष जानिये सोई ॥
सोवत जागत लखे अकारा । तहांलग कर्तारूप निहारा ॥
वारखान धरती असमाना । सो सब कर्ता माहि समाना ॥
जलथल सप्तदीप नौखण्डा । लोक अलोक सकल ब्रह्मण्डा ॥
गुप्तप्रकट जहांलग आकारा । सो सब कर्ता बीच निहारा ॥
भिन्नभाव कछु दृष्टि न आवै । सोई ब्रह्म ज्ञान कहलावै ॥

साखी-कर्तारूप बिचारिये, जहांलग सकल अकार ।
इच्छा द्वैत विनास होय, रहो एक करतार ॥
प्रथमहि अबिगत ब्रह्म है, तिनते ब्रह्म अनेक ।
सकल बुंद सिंधुहि मिलै, बहुर एकको एक ॥
द्वैत रूपको ध्यानमों, कारज लहे न कोय ।
आदि पुर्ष चीन्हे बिना, मुक्त कौन विध होय ॥
सुक्रित सुनौ सुजान, अक्षै नाम चीन्हे बिना ।
यमघर करे पयान, युगनयुगन भर्मत फिरे ॥
तैतिस कोट बखाना, सकल देव अब भाषिया ।
तिनमों तीन प्रमान, जाव सकल विस्तारहै ॥
युगप्रति तन धरधर मरे, मायाको व्यवहार ।
अंतकाल सबको भषे, इनते पुर्ष निनार ॥
आदि पुर्ष बैठे जहां, अबिगतरूप अनाद ।
रचनाते बाहिर रहै, तिनको भेद अगाध ॥
महाविष्णु गोलोकके, आर अर्चित बखान ।
रग ममा जोत मह. ताहां करे प्रवान ॥
पिंडमहीं ब्रह्मंड औ, नहीं लोक आकार ।
अनंत लोकते पित्रहै. सुक्रित करो विचार ॥

निरगुण मो मन लीन रहु, करे जीव गतनाश ।
 नहुर कालबश ना परे, अजर अमाघर बास ॥
 जेन संतनको यह मता, बरनत बने न मोहि ।
 तेन पटतर का दीजिये, कहि समुझाऊं तोहि ॥
 तकोट वारो जहां, ज्ञानी लक्ष अनेक ।
 तो निरगुनमों रत सदा, सो अनंतमों एक ॥

सुक्रित वचन-चौपाई ।

हो समर्थ मैं तुव वलिहारी । संतन महिमा कहो विचारी ॥
 संतरूप कैसे पहिचानी । महिमा तास कोन विधि जानी ॥
 कैसे भेद तासको पावे । कैसे परम संत बस आवे ॥
 और संत एक देहु बताई । तुमको आहु कहाँते आई ॥

योगजीत वचन ।

हो सुक्रित मैं कहों बखाना । तुमसों भेद कहों निर्बाना ॥
 अपनी उत्पत्त देहु बताई । तुम्है भेद कह्यु नाहे दुगई ॥
 आदि भेद अब कहों बुझाई । तुम सुक्रित सुनियो चितलाई ॥
 प्रथमहि पुर्ष आप निबाना । तब नहिं रचना अश बखाना ॥
 जबै पुर्ष मन इच्छा आई । षोडश अंश तबै उपजाई ।
 चौदह सुत तहां रहे छपाई । तिनको भेद कोई नहीं पाई ॥
 सक्त निरंजन तब उपराजा । जिन सब कियो सृष्टिको साजा ॥
 तिनसों त्रिगुनरूप प्रकटाया । जिनसों भई सबनकी काया ॥
 तिन पुन चारों वेद बखाना । तामें जीव सबे लपटाना ॥
 चारखान तब प्रकट कीन्हा । तेहिमों फौंस जक्त सब लीन्हा ॥
 फिर पुन चउदह यम उपराजा । तब चौगसी कीन्ह समाजा ॥
 तीरथ व्रत औ नेम अचारा । दान पुण्य जप मंत्र विचारा ॥
 इतना करे जगतमें कोई । यमकी त्रास न छूटे सोई ॥

यामह सकल जीव उरझाई । अंतकाल पुन धरधर खाई ॥
स्वर्गलोकमह जो चल गएऊ । तेतो आके देह फिर धरेऊ ॥
तेहुना यमकी छूटे त्रासा । भान अनेक जीवनको फाँसा ॥
जबै पुर्ष अस देखेउ भावा । सत्तपुर्ष एक खयाल बनावा ॥
सत्तपुर्ष इच्छा उपजाई । पुहुप नाम तब अंश बनाई ॥
तिन्है पुर्ष अस आज्ञा कीन्हा । भौसागरको आयसु दीन्हा ॥

साखी-पोहोप नाम तबही चले, पुर्षहि शीस नवाय ।

भौसागरमों प्रकटभो, अबिगत रूपबनाय ॥

चौपाई ।

अविगतरूप छांड हम दीन्हा । संन स्वरूप भेष गहि लीन्हा ॥
शब्दस्वरूप बनाये सोई । तिनकी देहन छाया होई ॥
पाँच तत्त्व तीनोंगुन नाही । धरी देह तब बसत युगमाहीं ॥
सत्तनाम हम नाम धगवा । सब जीवनको संघ लखावा ॥
या विध अजदेह धर लीन्हा । सबको आय सिखावन दीन्हा ॥
तब पुन जगमों संघ लखाई । निरगुन मता सबै समुझाई ॥
जो जिव संघ शब्दकी पाई । जीव असंखन लोक पठाई ॥
प्रथमहि सतयुगमें हम आये । सत्त नाम तब नाम धराये ॥
तब हम जीव असंखन तारे । यमको मार तब जीव उबारै ॥
प्रेतामाहिं बहुर हम आये । मुनिकह बोध मुनींद्र कहाथे ॥
कोटिन जीवको संघ लखाये । एतक जीवको तब मुक्ताये ॥
तीजे फिर द्वापरयुग आई । मुनि करुनामै नाम धगाई ॥
कोटिन जीव तबै हम तारे । महाकालते जीव उबारै ॥
फिर कलियुगको आयेउ भाई । योग जीत तब नाम धगाई ॥
कालहिं जीत हंस मुक्ताये । सत्य शब्दकी संघ लखाये ॥
जीव असंखन तारेउं आई । सत्तपुर्षकी दर्श कराई ॥

साखी-चागे युग हम आइया, कीन्हेउ हंस उबार ॥
 कलयुग नाम बखानऊँ, योग जीत उच्चार ॥
 चौपाई ।

सुकित सुनो भेद निर्वाना । अपनी उतपत कहा बखाना ॥
 अब संतनको कहों संदेसा । जेहि विध लखो तासको भेसा ॥
 तिनकी रहन अब देउँ बताई । जाते तुमही संत लखाई ॥
 निरगुण चाल चले पुनसोई । सोई संत शिरोमणि होई ॥
 तीरथव्रत औ नेम अचारा । इतने रहैं संतसो न्यारा ॥
 दानपुण्य जगवर्ते धर्मा । एतो जक्त जानिये कर्मा ॥
 पूजा जाप ना दुतिया राखै । सत्तनाम हृदे अभिलाखै ॥
 तैतीसकोट देवगण भारी । ये सब माया रूप निहारी ॥
 दुतिया ध्यान अनित्य विचारै । अखै नाम हृदमों धारै ॥
 सोई निरगुण संत कहाई । ताकी परख मैं देउँ बताई ॥
 रहे विरक्त होय जगमों सोई । विरही संत सोइ पुन होई ॥

साखी-यह तो विस्वा धर्म है, दुतिया जप तप ध्यान ।

पतिव्रता इनमों नहीं, मगके रोग जान ॥

अक्षय नामको गहि रहे, तजेद्वैतके आस ।

सत्तपुर्षको पावई, पूरन परम विलास ॥

रहो एकता चित्तमों, दुतिया उसको जान ।

गगनमगन निशिदिन रहै, निरगुणसो पहिचान ॥

चौपाई ।

सुकृत सुनो ज्ञान अब सोई । निरगुण संत कैसे बसहोई ॥
 प्रथम संतको पावे जाही । प्रेम प्रीत तब कीजे ताही ॥
 करे बंदगी शीस नवाई । निज गृह तबे ताहि लैजाई ॥
 चंदन घसे धामको छावै । तापर बस्तर श्वेत बिछावै ॥

चरन पखार चरनारज लीजै । बहुत भांतसो भोजन दीजै ॥
महाप्रसाद तासुको लीजै । पीछे औपुन पूजा कीजै ॥
प्रथम बंदगी कायक जाना । मायक वायक फिर पहिचाना ॥
तीनों बंदगी करे बनाई । अनेक भांतिसो ताहे रिझाई ॥
द्रव्य देनको लोभन कीजै । चरनन तरे ताहि धरदीजै ॥
अष्टधातको काया जाना । सो उद्धार कैसे पहिचाना ॥
काया भार उतारके लीजै । चउदह रतन तब गुरुको दीजै ॥
आरती करे बहुभांत बनाई । काया भार तब ताको जाई ॥
यहविध भक्त करो चितलाई । यमको डंड छूट तब जाई ॥

साखी-आरती कीजै पुष्पको, बहुत दीनता लाय ।

कागाते हंसा भयो, सत्त भक्तको पाय ॥

इतनी प्रीत संत जब जाना । तबे संतसो निज मत ठाना ॥
क्रिया करै तबहीमुख बोलै । तबे संत दिल पर्दा खोलै ॥
तबे बन्तु निज देहि लखाई । तामो हंस समाध लगाई ॥
सोई करनी कछुदिन करई । आदिव्रज अंतर लख परई ॥
पुर्षलोकमों गहे समाई । तबही बुंद सिंध मिलजाई ॥
इतना खोज करे पुन जबही । अजर अमर घर पावे तबही ॥
निरगुण संतको भेद बतायो । निजमत खोल मैं तुम्हें लखायो ॥
अब एक भागम तुमसों भाषों । सुकित गोय कछू नहिं राषों ॥

साखी-निरगुणको औतार है, सो प्रकटे जग आय ।

ऋषिमुनि ताको ना लखे, गुप्तसो रहो छिपाय ॥

ताको भेद अब देखू बनाई । संत रूपसो जगमों आई ॥
बालक होय पुन जगमों आवै । कमलपत्र पर आसन लावै ॥
निरुनाम जुलहा कहाई । भक्तदेन ताके गृह जाई ॥
खान पान कछु करिहै नाहीं । दिनदिन अंग बढ़न पुन जाहीं ॥

शब्दस्वरूप देह तिन होई । पांचपचीस तीन नहिं कोई ॥
 छलदिक्ष्या रामानंदसो लैहै । तिनको फेर उलट समुझैहै ॥
 पांडव यज्ञ तिन पूरन कीन्हा । स्वपच भेष तिनही घर लीन्हा ॥
 कोटिन हंस तबै मुक्ताई । सत्तनाम कबीर कहाई ॥
 अजर अमरहो तिनकी काया । जासु देख काँपे यमराया ॥
 सोई नाम कबीर कहाई । हमैं उन्हे कछु अंतर नाहीं ॥
 ते पुन जगमों परकट होई । ताकर अवध बताऊँ तोही ॥
 सम्बत पंद्रहसे बीस प्रमाना । तबै आय जगमों प्रकटाना ॥
 निरगुण संघ तब जगमों आई । सोई नाम कबीर कहाई ॥
 दोई दीन को बोधे आई । मगहर अमी नदी बहाई ॥
 पंडाके पग जरत बुझाई । परसो तगको भरम छोडाई ॥
 सत्य शब्द प्रतीत दिदाई । भौसागरते जीव मुक्ताई ॥
 जीव असंखन तारे जवही । आवैं अंशलोकते तबही ॥
 कोटज्ञान धर्मदासहि देहैं । व्यालि पिढीथाना बैठेहैं ॥

साखी-नौत्म अंश पुष्पके, सो प्रकटे संसार ।

जीव असंखन संगले, जही पुष्प दवार ॥

भौसागरमें रोपेव थाना । धर्मराय शिर मरदेउ माना ॥
 तिनको मता सन्त जव पावै । सोतो अजर अमर घर आवै ॥
 ताको काल न पावे सोई । गुरु कबीर निज पावै जोई ॥
 हमरो उनको एक शरीरा । जाको सुनियो नाम कबीरा ॥
 सत्त कबीर पुष निर्वाणा । तिनको तुमसों कहीं बखाना ॥

साखी-अजर अमर सोइ जानिये, जाको नाम कबीर ।

तासु संघ जाने बिना, हंस न लागे तीर ॥

सुक्ति वचन-चौपाई ।

है समर्थ तुम आगम भाषा । आगकी अब बणों साखा ॥

निग्गुन अंश लीन्ह इम जानी । ध्यान मंत्र प्रभु कहो बखानी ॥
आगे बिनै करों बहु बारा । ताको भेद कहो निरधारा ॥
जीव मुक्तको भेद बताई । आपन करमो कह मुक्ताई ॥
बिनती करो दोय करजोरी । ध्यान मंत्रकी भाषों डोरी ॥
ताको मता धरो जिन गोई ! मोसो वर्ण सुनावो सोई ॥

योगजीति वचन ।

सुकिन सुनो भेद निर्वाना । जीवमुक्तको कहों प्रमाना ॥
मंत्र ध्यानको वर्णों अंगा । ताको भाव कहों प्रसंगा ॥
आदि मंत्र में देहु बताई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
सोई जाप अंतर लो लाई । अंतकाल ताको नहिं खाई ॥
ऐसा तुम्हे कहों उपदेशा । अंतर ध्यानको कहों संदेशा ॥
प्रथमहि जो सुख आसन लावै । राजस योग तब करे बतावै ॥
काया कष्ट न ब्यापै कोई । राजस योग पुन कहिये सोई ॥
पांच पचीसकी सुर्त बिसारै । अस्थिर बैठ ध्यान उचारै ॥
बैठे शून्य महलमों जाई । तबे निरंतर ध्यान लगाई ॥
प्रथम विरह वैगग समावै । रचना सकल तहाँ बिसरावै ॥
एक पुर्ष एक आपको जानै । द्वैत अकार शून्य पहिचानै ॥
तबही ध्यान समाध लगाई । जाकी सुर्त अन्त नहिं जाई ॥
दहिनो अग श्वास जब आवै । तबे ध्यान महुँ सुर्त लगावै ॥
पिंगला अंग पुर्षकी बासा । बाँये अंग शक्त प्रकाशा ॥
शक्त अंग कह देहु बचाई । दक्ष अंग वह सुर्त लगाई ॥
प्रथम रूप सोहंग उचारा । तामों लखो पवनकी धारा ॥
तामहुँ अर्ध पवन जो कहिये । सोहंगनाम पुन तामों लहिये ॥
प्रथम ध्यान घर देखे सोई । अंग अंग की पर्चे होई ॥

तास अंगमें देहु बताई । यह कौआय कहाँते आई ॥
 सोतो पुर्षको अंश कहाई । भीतर बाहिर सिद्ध कराई ॥
 पिंड ब्रह्माण्ड रहा भर पूरी । सोई निकट सोई है दूरी ॥
 तब अजपाकी तारी लावै । बिन जप हंसा तहाँ समावै ॥
 श्वेत रूपा श्वासा को रंगा । सुते समानी ताको संगी ॥
 सप्तपताल कोट ब्रह्माण्ड । सातद्वीप पृथ्वी नौखंडा ॥
 सोई सबमों रहा समाई । सो जगको करतार कहाई ॥
 एक संख छैलक्ष प्रमाना । इतना योजन लोक बखाना ॥
 सोइंग नामको लोक प्रमाना । आगे पुर्ष कहों निर्वाना ॥
 पर्दागख गुप्तकर भाखो । अक्षरकाट गुप्तही राखो ॥
 जेहिने जक्त लखे नहीं कोई । गुप्त अंक कर भाषों सोई ॥
 ताके आगे नाम बखानो । सोई नाम गुरुगमते जानो ॥
 प्रकट नाम कर भाषो सोई । सुनके जीव तरे सब कोई ॥
 अब मैं कहों आगेकी बानी । गुप्त अंक गुरुगमते जानी ॥
 प्रथमही सोइंग नाम बखानो । तामह बोइंग ब्रह्म समानो ॥
 सोइंग मध्य कोइंग दर्शाई । सोतो अंश पुर्षको भाई ॥
 दोय असंख दशनील बखाना । एता योजन लोक प्रमाना ॥
 श्वेत अंग तिनहूको कहिये । सोइंग पार धामसो लहिये ॥
 तिनके दर्श हंस जब पाई । कर प्रनाम तहैं शीस नवाई ॥
 बोइंग नाम आसिका दीन्हा । बहुत भाँति तिन दाया दीन्हा ॥
 तबे हंसको लीन्ह बुलाई । लोक प्रमान सब दियो बताई ॥
 तब उन डोरी दीन्ह लखाई । ता चढ़ि हंसा लोक सिधाई ॥

साखी—बोइंगको प्रनाम कर, तब डोरी गहि लीन ।

पुर्ष नाम सुमिरत भयो, परे पयाना दीन्ह ॥

तब आगेको कीन्ह पयाना । कोहंग नाम जहाँ अस्थाना ॥
 कोहंग नामको देखा जबही । हंस प्रणाम कीन्ह पुन तबही ॥
 दोयकर जोर सब अस्तुति कीन्हा । मस्तक हाथ पुर्ष तब दीन्हा ॥
 तबही हंस बहुत हरषाना । पायो पूगन पद निर्वाणा ॥
 तीन असंख वटनील बखाना । एता योजन लोक प्रमाना ॥
 श्वेत स्वरूप पुष है सोई । श्वेतही वर्ण लोक वह होई ॥
 तबै हंसको लीन्ह बुलाई । पाँजी लोकको दीन्ह बताई ॥
 मकतार तब डोर लगाई । तब आगेकी संघ बताई ॥
 हंस प्रणाम पुर्षको कीन्हा । तबही डोर हंस गहि लीन्हा ॥

साखी-बहुत भांति तिन पुर्षों, हंसा कीन्ह प्रणाम ।

तब आगे गवनत भयो, जोहंग नामको भाम ॥

तब हंसा आगे चलजाई । जोहंग नाम तहँ पुर्ष रहाई ॥
 हंसा तहाँ पयाना दीन्हा । जोहंग नाम तहँ बैठक कीन्हा ॥
 तबही पुर्ष हंसतन हेरा । हंस प्रणाम कीन्ह तेहि बेरा ॥
 तब पूरुष दिलदाया कीन्हा । वचन आसिका हंसहि दीन्हा ॥
 तब हंसा हिरदे हरषाई । हम पूरुषके दर्शन पाई ॥
 चार असंख नौ पदुम प्रमाना । जोहंग नामके लोक बखाना ॥
 श्वेत स्वरूप पुर्षकी काया । श्वेत वर्णसों लोक बनाया ॥
 तबही पुर्ष हंस सँग लीन्हा । लोक दिखाय तासुको दीन्हा ॥
 ताके परे विहंगम डोरी । मुक्तके मारग जाय जिवसोरी ॥
 सो हंसाको दीन्ह लखाई । ताचढ़ हंसा लोक सिधाई ॥
 आगे आदि पुर्ष निर्वाणा । तहाँको हंसा कीन्ह पयाना ॥

साखी-भांति अनेकन पुर्षों, अस्तुत कीन्ह प्रणाम ।

आदिपुर्ष अवस्थानमों, हंसा कीन्ह पयान ॥

जबही हंसलोक नजिकार्ह । तबही देह हिरंमर पाई ॥
 षोडश भान देह उजियारी । ऐसा रूप हंस तब धारी ॥
 हंसा तबै तहां चल जाई । जसत पुर्ष तहाँ आप रहाई ॥
 कमल अनंत पखूरी जानो । आदिपुर्ष जहाँ आसन ठानो ॥
 पोहोप दीप तेहि नाम बखाना । सत्तपुर्ष कीन्हो अस्थाना ॥
 सोई नाम निर्गम्य बखानी । अनंत नाम ताते प्रमानी ॥
 ताको नाम हंस जो पाई । जीवन मुक्त हंस होय जाई ॥
 सोई नाम जो सुमिरण करई । विन तप भक्ति सो प्राणी तरई ॥
 योजन अनंत लोक विस्तार । आदिपुर्ष तहाँ करहि विहार ॥
 श्वेतहि वर्ण पुर्षकी काया । संपुट कमल देखिये छाया ॥
 पुष्पहि धरनी तहाँ रहाई । जहाँ हंस सब राज कराई ॥
 चारकरी सिंहासन जोरा । तइवां मध्य पुर्ष अंजोरा ॥
 जगमग जोत अगिन उजियारा । वर्णत बने न अपरम्पारा ॥
 हंस अनंतन बैठे तइवाँ । माथे मुकुट छत्रमणि जइवाँ ॥
 षोडशभान हंस उजियारा । देह हिरंमर सो विस्तारा ॥
 चंद न सूर दिवस नहिं राती । वर्ण अवर्ण न जात नहिं पांती ॥
 माया कालकी तहाँ न छाया । अजर अमर हंसनकी काया ॥
 पुरुषनाम अस्थान बतायो । आदिनामकी संघ लखायो ॥
 सोई नाम हंस जो पावै । योनी संकट बहुर न आवै ॥

साखी-आदि अमर अक्षत हैं, अविगत अविचल धाम ।

आदिपुरुष सो जानिये, रूप निहगम्मी नाम ॥

आदनाम मैं परकट भाखा । वर्णों मूल फूल फल साखा ॥
 और नाम एक पुर्ष बखाना । विहंग नाम तासुको जाना ॥
 सोतो रहे पुरुष दरबारा । ताको भेद मैं कहीं विचारा ॥
 अजपा सिद्धि देउँ बतलाई । ताको भेद कहीं समझाई ॥

प्रथमें सोहंग पुर्ष बखाना । तामें अलख ब्रह्म पहिचाना ॥
 निः अक्षर निःतत्त्व अधारा । तामह अर्ध पवन हंकारा ॥
 सोहंग कार गगन अस्थाना । तामह पूरण ब्रह्म समाना ॥
 तामह नाम निगम्य है सारा । सोहै सबको सिरजन हारा ॥
 तासों हंस लीन होय जाई । निःअक्षरमों रहे समाई ॥
 सिंधुबुन्द तहैं एकै होई । दुनियाँभाव नाश होय सोई ॥
 सोनिज अजपा है निर्वाणा । आत्म हंसा तहां समाना ॥
 वोहंग कोहंग जोहंग नामा । सोहंग सुर्त निरन्तर धामा ॥
 सोई नाम जीव रखवारा । अमी अत्र बिहंग विचारा ॥
 आगे आदिनाम हम भाखा । ताकर नाम सो गुप्तहि राखा ॥
 अंतर अजपा नाम सनेही । अमी सोहंग पुर्षकी देही ॥
 लागी निरंजन बेहंगमतारी । अष्ट गगनकी खुली किवारी ॥
 दहिनो अंग पुर्ष अस्थाना । तहवां हंसा कीन पयाना ॥
 मकतार गहि हंस उड़ाई । आगे अकह कमल दरशाई ॥
 कमल अनंत पंखुरी छाजै । आदिपुर्ष जहाँ आप विराजै ॥
 श्वेत सिंहासन श्वेतहि काया । श्वेतहि पुर्ष श्वेतही छाया ॥
 श्वेतछत्र शिर मुकुट विराजै । भान अनंत शोभा तहाँ लाज ॥
 श्वेत चवर शीस फहगई । भान अनंत कला वहाँ छाई ॥
 ऐसे निरगुण नाम अनूपा । महापुर्षसो आदि स्वरूपा ॥
 नाम तेज बल सुमिरन पाई । महाकालते जीव छोडाई ॥
 बहुर न होय जीवकी हानी । निश्चय सत्पुर्षको जानी ॥
 यह मत निरगुण पावे कोई । जाको सतगुरु पूरा होई ॥
 यह मत पाय अमर होय जाई । बहुर न जीव प्रलै तर आई ॥
 सत्यनाम सतगुरु परतीती । हंसा चले तब भोजल जीती ॥
 है सुकृत तुम संत सुजाना । तुमसों कहीं मैं योग ठिकाना ॥

या विधि करनी करे बनाई । सत्त सिधमो जाय समाई ॥
 ना फिर आवे ना फिर जाई । अजर अमर घर रहै समाई ॥
 जीव बुद्ध नाश तब होई । ब्रह्म समाय ब्रह्म होय सोई ॥
 ताकर संय कहो निखारी । हंस होय सो लेय विचारी ॥
 यह तो भेद ना राखौ गोई । आदि योग मैं भाखों सोई ॥
 अब मैं कहौ मंत्र उपदेशा । भाखों आदनामको भेषा ॥
 गुप्त अंक लिख देउ बताई । पुस्तक देख लखो नहि जाई ॥

साखी-गुप्त भेदको मंत्र यह, वर्णों अंक छपाय ।

सो अंतरमों जाप कर, ताको काल न खाय ॥

अजपाको मन ध्यान घर, सो यह मंत्र बखान ।

सो तो पुन अस्थिर भयो, बहुर न जीवकी दान ॥

मंत्र ।

बो सों जो को अ अ निः म वे कां ज्र मी हं हं हं हं हं हं हं छे
 रू है सं हं म म नो ग नि पू प त अ हं ॥
 हे सुकित तुम बड़े विवेकी । तुमको बुद्ध सकल हम देखी ॥
 ताते तुमको मंत्र सुनावा । जीव काजको शब्द लखावा ॥
 सो तुम राखो गुप्त छिपाई । यह जनि कहो खोलके भाई ॥
 यह निजमन्त्र प्रकट जो होइ है । विन करनी हंसा तर जैहै ॥
 गुप्त पंथ चाल मिट जाई । ताते करनी कहि समुझाई ॥
 योगध्यान कुछ करनी कीजै । पीछे मंत्र जाप तेहि दीजै ॥
 मंत्रपाय मन आपा आई । गुरुकी आसन राखे पाई ॥
 तबे हंसको होय अकाजा । ताते कहो योगको साजा ॥
 मंत्र जोर ते लोकै जाई । शोभा हीन हंस होय भाई ॥
 षोडश भान हंस उजियारा । सो नरहै गतमंद विचारा ॥
 मंत्र ध्यान अजपाको साथै । या विध सन्त ध्यान अवराधै ॥

तबही सुफल कामना होई । पहुँचे हंस लोकको सोई ॥
अजर हिरंमर देही पावै । योनी संकट बहुर न आवै ॥

साखी-जीव मुक्तको मंत्र यह, बणों अंक छपाय ।
ताको जप मनमों करे, ताको काल न खाय ॥
सुकृत वचन-चौपाई ।

हो सतगुरु तुम मंत्र सुनायो । मेरो हृदै सांच अब आयो ॥
अब गुरु कहो लगनकी वानी । श्वासा लगन कैसे पहिचानी ॥
अलख मता है ताको साई । ताको भेद कहो समुझाई ॥
कैसो रंग लगनको होई । कारण भेद कहो प्रभु सोई ॥
साखी-जैमुन जगपत केतुकी, औ व्यालिन पहिचानी ।
गुण प्रकाश लक्षण सहित, सतगुरु कहौ बखानी ॥

योगजात वचन ।

सुकृत सुनो लगन बेवहारा । तुमसो भेद सब कहों बिचारा ॥
प्रथमे श्वासा ध्यान लगावै । ताको रंग दृष्टमों आवै ॥
पीतवर्ण तहां देखे जबहीं । अति हुलास मन आवे तब हीं ॥
उपजे सुख पीत रंग जानी । जगपति लगन पुन ताहि बखानी ॥
अरु पुन श्वेतवर्ण लख आई । अस्थिर समाध रहे ठहराई ॥
उपजे प्रेम भक्त अधिकारी । दया लीन तब सुत निहारी ॥
श्वेतभाव जब मनमों आवै । सोई जैमुन लगन कहावै ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई । श्वासा पवन श्वेत लख आई ॥
जल आकार पुन भासों जबहीं । उठे सुगंध श्वासमों तबहीं ॥
ध्यान बीच आकार न जाने । केतुकी लगन ताहि पहिचाने ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई । अरुणश्याम तहां भूमि लखाई ॥
अहंकार मन शठता आवै । सुख नाश होय दुःख उपजावै ॥
इतना भावही देखे जाई । व्याल लगन कहावै भाई ॥

साखी-श्वासा मद्धे तत्त्व हे, लगन तत्त्वके माहिं ।

योगीजन पहिचानि हैं, ज्ञानी जानत नाहिं ॥

प्रथमहि पृथीतत्त्वको पाई । तामें जगपति लगन मिलाई ॥
 अष्टोदिशा गवन तब कीजै । सकल बिचार छांड तब दीजै ॥
 अष्ट सिद्ध नव निद्धि कहाई । सो तो तहां सहजमों पाई ॥
 मनमों इच्छा जाकी होई । सुफल कामना पावै सोई ॥
 कोटिन कार्य सिद्धता पावै । सर्व जीत होय घर को आवै ॥
 मनमों द्वार न आवै कबही । ऐसी लगन बिचारे जबही ॥
 सूरको सगुन एक गुन जानो । यह मत विश्वावीश बखानो ॥
 ताको भेद मैं दीन्ह बताई । सबे सिद्धको मूल लखाई ॥

साखी--जैतिक कारज जगतमों, चर औ अचर विचार ।

ते सब जानो सुफल है, कोट सिद्धको सार ॥

जैमुन लगन कहाँ समुझाई । ताकर फल मैं देऊँ बताई ॥
 जलके पृथीतत्त्व दोय पावै । तामें जैमुन लगन पिलावै ॥
 तबही ज्ञान करे जो कोई । सबे सिद्धता पावै सोई ॥
 कबहुं न होवे तनमों पीरा । जीते युद्ध मझ रणधीरा ॥
 मनवांछित फल पावै सोई । जितने कार्य जगतमों होई ॥
 एक सिद्धकी कौन चलावे । कोटिन सिद्ध तामें फल पावै ॥

साखी-नौ ग्रह घातिक दरसके, और योगिनी काल ।

लगन तत्त्व लखके चले, कारज होय ततकाल ॥

सुर औ तत्त्व बिचारके, तामह जैमुन होय ।

जौन वचन मुखसों कहे, सिद्ध जानिये सोय ॥

तीसर लगनको भेद बताऊँ । ताको अर्थ तब वर्ण सुनाऊँ ॥
 जलके पृथी तत्त्व एक पावै । तामह लगन केतुकी आवै ॥
 ताके जोर कार्यको जाई । सोतो कार्य मिले उठ धाई ॥

राजाराव मिलनको जाई । देखत ताहि सभा भहराई ॥
हाथ जोर आगे चलआई । बहुत भांति तेहि सेवा लाई ॥
कार्य सिद्ध तब जगमों जानो । चर अह अचर जेते पहिचानो ॥
योग सिद्धके साधन कीज । यह मत सुरत देख जब लीज ॥

साखी-सर्व अर्थ मन कामना, आनन्द सकल हुलास ।

जेते सुख है जगतमों, सो सब ताके पास ॥

चौपाई ।

व्याल लगन अब कहीं विचारी । सोतो युद्धकार्यको भारी ॥
दहिनों सुर पुन आवे जबही । व्याल लगन कहावै तबही ॥
सोसो जाय लाखको मारै । सो संग्राम न कबहूँ हारै ॥
यम स्वरूप जब कटक दिखाई । देय शत्रु तब तुरत पगई ॥
याको दृष्टि भरि हँरै जबही । मानों काल गिगसे तबही ॥
मानों काल लीन्ह औतारा । या विधि ताको रूप निहारा ॥

साखी-व्याल लगनको भेद यह, तुमसों कहीं विचार ।

सिद्धिकार्य यामें नहीं, युद्ध जीत अहंकार ॥

जैमुन जगपत केतुकी, औ व्यालिन पहिचान

अर्थ सहित गुण लगनको, तुमसों कहीं बखान ॥

कोटि योगको योग है, कोटि ज्ञानको ज्ञान ।

कोटि सिद्धको सिद्ध है, कोटि ध्यानको ध्यान ॥

नौ षट चार अष्टदश, तैंतिस कोटि बखान ।

ताते मत आगे कहीं, महारूप विज्ञान ॥

योग ध्यान आक्षेप मत, आदि नाम ले जोय ।

उलट समानों आपमों, जीवन मुक्ता होय ॥

चार मुक्तके बीचमें, रहे अवध परमान ।

याते रहित बखानिये, फिर नहिं आवाजान ॥

चली पूतरी नोनकी, थाह सिन्धुको लेन ।
आपन गल पानी भई, उलट कहेको बैन ॥

चौपाई ।

हे सुकित तुम हो बड़ ज्ञानी । तुम सो भेद अब कहों बखानी ॥
यह निगुण मत राखो गोई । जगमों प्रगट न कीजै सोई ॥
यहतो अगम निगमकी बानी । ताको भेद जक्त नहिं जानी ॥
अपनो काज गुप्त कर लीजै । ताको रम न काहू दीजै ॥
जाकह जानहु आप समाना । ताको यह मत कहो बखाना ॥
तुम आये जीवनके काजा । बासन जान बस्तधरो साजा ॥
कलियुगआदि द्वापरको अन्ता । निजमत तुमसों भाषो सन्ता ॥
यह तो तुम्हे सिखावन दीन्हा । तुमतो रहो नाम लौलीन्हा ॥
ध्यान समाध करो चितलाई । आप अपनमों रहो समार्ह ॥
पुर्ष संघ हृदमों राखो । और ज्ञान प्रगटकर भाखो ॥
अब भौसागर करो पसारा । हम अब चले पुर्ष दरबारा ॥
आपन सुर्त नामसों लावो । भौसागरते जीव मुक्तावो ॥
जीवतपुर्ष सो पर्व कीजै । ऐसो चित समाधमों दीजै ॥
बहुर मरे की रहे न आसा । जीवत करे लोकमों बासा ॥

साखी-जीवत समानो लोकमों, नहीं मरणकी आस ।

जीवन मुक्ता होय रहो, सत्त नाम पर्काश ॥

सिंधु समानो बुंदमों, बुन्दही सिंधु समान ।

सिंधु बुन्द एकै भयो, बहुर न आवा जान ॥

अगम ज्ञान अक्षेन मत, आदि रूप विज्ञान ।

हेसुकृत निगुण कथा, तुमसों कहों बखान ॥

इति श्रीग्रन्थ पंचमुद्रा सुरुतोयोगजीत संवादः सम्पूर्णः ।

